दो शब्द

स्वतन्त्रता के पश्चात् विगत बाईस वर्षों में मांस मद्य के खान-पान की अत्यधिक वृद्धि हुई है। हमारी सरकार भी बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य-समस्या के समाधान के लिए मुर्गी तथा मत्स्यपालन को सब प्रकार का प्रोत्साहन दे रही है किन्तु "मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" खाद्य समस्या उत्तरोत्तर उलझती ही जा रही है।

हमारी सरकार ने जितना धन और साधन मुर्गी तथा मत्स्य पालन के लिए जुटाये हैं उतने यदि "अन्नं बहु कुर्वीत" "पुष्ट्यै गोपालम्" इस प्राचीन आदेशानुसार कृषि और गोपालन के लिए जुटाते तो हमें आज भोजन के लिये विदेशों की ओर टकटकी लगाने की आवश्यकता न होती और न पवित्र भारत भूमि पर मांस मद्य व्यभिचार आदि की वृद्धि होती ।

"मांस मनुष्य का भोजन नहीं" इस पुस्तक में युक्ति और प्रमाणपूर्वक इसका प्रतिपादन किया है। संतुष्टि के लिए प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषि, मुनि, डाक्टर तथा वैज्ञानिकों की सम्मतियां भी उद्धृत की हैं। पुस्तक को उपयोगी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

ब्र० विरजानन्द ने इसके प्रमाणसंग्रह तथा प्रेसकापी बनाने में विशेष सहायता दी है। इसी प्रकार ब्र० कृष्णदेव और ब्र० योगानन्द ने भी प्रेसकापी बनाने में सहयोग दिया है। अतः इनका आशीर्वाद सहित धन्यवाद करता हूं।

सितम्बर १९६९ — आचार्य भगवान्देव

प्रकाशक—

हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, रोहतक।

मूल्य ३-००

द्वितीय बार सं० २०४०
१९८३

मांस मनुष्य का भोजन नहीं

लेखक

श्री स्वामी ओमानन्द सरस

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर रोहतक

महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के
अवसर पर प्रकाशित

द्वितीयवार ३०००
विक्रम सम्वत् २०४०
मूल्य ३) रु.

मुद्रक : भाटिया प्रैस रघुवरपुरा नं. २ गांधीनगर दिल्ली—३१



क्र०	विषय	पृष्ठ
१.	मांस मनुष्य का भोजन नहीं	१—५
२.	वेद में मांस-भक्षण निषेध	६—८
३.	महाभारत में मांसभक्षण निषेध	९-१०
४.	मांसाहारी लोगों द्वारा हानि	११-१४
५.	बौद्ध और जैन मत	१५
६.	मांसाहार पर सन्तों की सम्मति	१६
७.	गुरु ग्रन्थ साहब में मांसभक्षण निषेध	१७-१८
८.	श्री सन्त गरीबदास	१९
९.	मुसलमानों को उपदेश	२०
१०.	क़ाजी और पीर को उपदेश	२१
११.	प्राणियों के शत्रु मांसाहारी मनुष्य	२४
१२.	मानव शरीर-रचना और भोजन	२६
१३.	मांसाहारी और निरामिषभोजी जीवों में अन्तर	२७-३०
१४.	मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं	३१-३६

क्र०	विषय	पृष्ठ
१५.	आहार के छः अंश	३७-४१
१६.	मनुष्य का आहार क्या है	४२
१७.	सात्विक भोजन	४३-४८
१८.	राजसिक भोजन	४६
१६.	तामसिक भोजन	४६
२०.	मांसाहार ही रोगोत्पत्ति का कारण	५१
२१.	शाकादि तथा अन्न में यूरिक एसिड	५२-५७
२२.	रोगों का घर मांसाहार	५८-७६
२३.	मांसाहारी वीर नहीं होते	८०-८१
२४.	हमारे निरामिषभोजी सैनिक	८२-८४
२५.	अण्डा और मछली	८५-८८
२६.	निरामिषभोजी सिंह और सिंहनी	८६
२७.	अहिंसक सिंह	६०
२८.	दुग्धाहारी अमेरिक सिंहनी	६०-६१
२६.	मांसाहार मंहगा भोजन है	६२-६४
३०.	क्या मांसाहार से अन्न बचता है	६५
३१.	संसार के निरामिषभोजी महापुरुष	६६-६६
३२.	पापों का मूल मांसभक्षण	१००-१०६

प्राक्कथन

"मांस मनुष्य का भोजन नहीं" इस विषय का प्रतिपादन हमारे देखते हुए इतिहास में प्रथम बार ही हुआ है। इतना तो पहले भी सुनने में आता रहा है कि मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, किन्तु 'मांस मनुष्य का भोजन नहीं' और "मांस नहीं खाना चाहिये" इन दोनों में बहुत अन्तर है। "मांस मनुष्य का भोजन नहीं" यह वाक्य अपने भीतर कुछ आकाङ्क्षित वस्तुओं को समेटे हुए है, वे वस्तु क्या हैं, उन सब का विवेचन लेखक महानुभाव श्री आचार्य भगवान्देव जी ने बहुत ही हृदयग्राही ढंग से किया है। इन सब का दिग्दर्शन मैं अपने इस वक्तव्य में आगे चलकर करूंगा, उस कथन से पूर्व अध्येताओं का ध्यान एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात पर ले जाना चाहता हूं वह यह कि—

गुरुकुल झज्जर में एक "हरयाणा साहित्य संस्थान" है, इस संस्थान के अधीन अनेक प्रकार का साहित्य प्रकाशित होता है, जो संस्कृत अथवा हिन्दी में दिया जाता है। साहित्य मनुष्य जीवन का एक ऐसा साथी है, जो जीवन की गहराइयों में उतरकर प्रत्येक असुविधाओं, बाधाओं और अनात्मतत्त्वों का समाधान करता हुआ आगे बढ़ाता है। यह संस्थान अपने पाठकों को मानव-हितकारिणी सामग्री ही देता है और ठोस तथ्यों का उद्घाटन न करके केवल मनोरञ्जन करके मनुष्य का धन और समय क्षीण नहीं करता। अतः इस संस्थान से प्रकाशित सभी ग्रन्थ सर्वदा उपादेय रहे हैं।

इस पुस्तक में पाठकों की सुविधा के लिये लेखक ने विभिन्न शीर्षक बनाए हैं, जिससे भली-भांति यह हृदयङ्गम हो जाये

कि मनुष्य ने मांस भक्षण का भी जो अधिकार अपने लिये सुरक्षित रख लिया है, वस्तुतः ऐसा करके उसने भारी भूल की है और इस भूल का संशोधन केवल एक ही बात से है—वह यह कि देवता बनने के लिये, अथवा सही रूप में मानव कहलाने के लिये स्वयं मांस का प्रयोग करना छोड़ दे और जितना सम्भव हो, अन्यमांसाहारियों को भी अपने अनुभव से अपने जैसे सत्पुरुष की पंक्ति में ला बैठावे।

जो व्यक्ति अपने आप का आसन इस विश्व में सभी प्राणियों से ऊंचा बिछाता है क्या उस पर बैठकर उसे अपने खान पान का इतना भी विवेक नहीं कि वह पशु ही कम से कम कहला सके। एक पशु भी अच्छी प्रकार यह समझता है कि मैंने क्या खाना है और क्या नहीं। उसे सिखानेवाला नहीं है, फिर भी अपने आहार का ध्यान रखता है, परन्तु मनुष्य पशु से भी इतना नीचे गिर गया है कि दूसरों के द्वारा परामर्श दिये जाने पर भी वह अपने को उसी रूप में गौरवशाली समझता है। क्या एक समझदार आदमी को अपना पौरुष अपने से निर्बल प्राणी को मारकर अथवा उसे खाकर ही दिखाना है। ईश्वर ने मनुष्य के खाने के लिये स्वादु मधुर, पौष्टिक, बुद्धिवर्धक और हितकर इतने पदार्थ बना रखे हैं कि उन को छोड़कर वा उन्हें भी खाकर एक गंदे वस्तु पर टूटना कहां तक उचित है।

"मांस मनुष्य का भोजन नहीं" इस पुस्तक के लेखक के हृदय में एक तड़प है, ऊंची भावना है, अपने जीते जी अपने समान दूसरों को उठाने की कामना है। उनके इन विचारों का जनता ने सम्मान किया है। आपके लिखे दर्जनों पुस्तक मनुष्यों के जीवन को उठाने का उच्च सन्देश देरहे हैं। उसी शृङ्खला में यह प्रस्तुत पुस्तक भी एक कड़ी है।

मनुष्य के धर्मशास्त्र में इस अहिंसा का सबसे ऊंचा स्थान है। इसलिये यह कहना सर्वथा उचित होगा कि मांस छोड़ देनेवाला व्यक्ति अन्य सब बुराइयों से भी मुक्त हो जायेगा। जो इस लत से दूर रहे हैं, उनकी अपेक्षा वे लोग वीर माने जायेंगे, जो इस लत को लात मार निरीह पशुओं के आंसू पोंछेंगे।

सिद्धहस्त और प्रसिद्ध लेखक ने मानवता और दानवता को इस पुस्तक में सर्वथा स्पष्ट करके रख दिया है। यह मानवता और दानवता संसार में किसी वर्ग को बपौती में नहीं मिली है। इसलिए दयालु लेखक ने बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी सम्प्रदायवालों से खुलकर बात की है, और उसने उन्हीं के धर्माचार्यों के प्रमाण देकर पूछा है कि आप यह सब कुछ करते हुए क्या अपने धर्म में दीक्षित रहने के अधिकारी हैं।

विचारवान और उदार लेखक ने विषयों के चयन एवं उनके प्रतिपादन करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है। एक प्रसङ्ग में मुसलमानों के धार्मिक पुस्तक 'अबुल फजेल' का प्रमाण देते हुए लिखा है कि "अज्ञानी पुरुष अपने मनकी मूढ़ता में ग्रसित हुवा अपने छुटकारे का मार्ग नहीं ढूंढता। ईश्वर सबके सर्जनहार ने मनुष्य के लिए अनेक पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उनपर सन्तुष्ट न रहकर उसने अपने अन्तःकरण (पेट) को पशुओं का कब्रिस्तान बनाया है और अपना पेट भरने के लिये कितने ही जीवों को परलोक पहुँचाया है।"

विभिन्न प्राणियों की शरीर रचना एवं रहन-सहन से भी भोजन के विवेक का परिचय इस पुस्तक में अच्छे प्रकार दिया है। जैसे रहन-सहन को ही लीजिए—मांसाहारी जन्तुओं का समुदाय नहीं होता, जिनका वे शिकार करते हैं, उनका झुण्ड या समुदाय होता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी लेखक ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आहार के छः अंश चिकनाहट, लवण, शक्कर, प्रोटीन, विटेमिन्स और जल ये मांस में कम हैं।

पुस्तक केवल मांस-भक्षण निषेध पर ही प्रकाश नहीं डालता अपितु मनुष्यों के लिये आहारों और भक्ष्यपदार्थों का भी निरूपण कराता है। इसके लिये गीता आदि के प्रमाण भी संगृहीत किये हैं।

निरामिषभोजी रहकर बल प्राप्त करनेवाले ऐसे पहलवानों के भी इस

पुस्तक में उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके पतले शरीरों ने मोटे शरीर वाले मांसाहारियों के सम्मान को धो ह्रास करते समय कुछ ही क्षणों में मिट्टी में मिला दिया है।

इस पुस्तक पर जितना लिखा जाय, कम है। यह बात जानते हुए मैं अपनी लेखनी को यहीं विराम देता हूँ और शिक्षा परिषदों एवं राज्य सरकारों से भी अनुरोध करता हूँ कि वे भारतीय नौनिहालों की संरक्षा हेतु इस पुस्तक को हिन्दी के पाठ्य-पूरक ग्रन्थों में स्थान देकर अपने नाम को यशस्वी बनायें।

जिनकी यशस्वी लेखनी से "मांस मनुष्य का भोजन नहीं" यह और अन्य इसी प्रकार के हितकारक ग्रन्थ लिखे गए हैं, वे केवल साहित्य सर्जन के द्वारा ही मनुज-हित नहीं साधते, अपितु हरयाणा के पुरावशेषों को भूमि की उदर गुहा से निकालकर भारत का सच्चा इतिहास लिखने के लिए उसका एक अभूत पूर्व संग्रह भी गुरुकुल झज्जर में "पुरातत्त्व संग्रहालय" के नाम से किए हुए हैं, एवं बालक-बालिकाओं का आर्ष शिक्षा के द्वारा उच्च विकास करने के लिये गुरुकुल झज्जर और कन्या गुरुकुल नरेला का संचालन भी कर रहे हैं। इन सब कार्यों से सन्तुष्ट होकर भारत सरकार ने उन्हें हरयाणा का अग्रणी पण्डित मानकर १५ अगस्त १९६९ को विशेष रूप से सम्मानित किया है। इससे पता चलता है कि इनके प्रति जनता की गहरी आस्था है। अतः मैं भी इन वाक्यों में उन्हें अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टि से देखकर साधुवाद देता हूँ और शुभ कामना करता हूँ कि वे अपने विस्तृत कार्य क्षेत्र में उत्तरोत्तर अग्रसर होते रहें।

हितेच्छु
वेदानन्द वेदवागीश
प्रस्तोता
श्रीमद्दयानन्द आर्षविद्यापीठ

ओ३म्

मांस मनुष्य का भोजन नहीं

पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि जितने भी संसार में प्राणी हैं, सब अपने अपने स्वाभाविक भोजन को भली-भाँति जानते तथा पहचानते हैं। अपने भोजन को छोड़कर दूसरे पदार्थों को सर्वथा अभक्ष्य समझते हैं, उनको न देखते हैं, न सूंघते हैं। अत: अपने आपको सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ समझने वाले इस मनुष्य से तो सभी अन्य प्राणी ही अच्छे हैं। जैसे जो पशु घासादि चारा खाते हैं, वे मांस की ओर देखते भी नहीं और जो मांसाहारी पशु हैं, वे घासफूंस की ओर खाने के लिये दृष्टिपात तक नहीं करते। उसी प्रकार कन्द-मूल और फल-फूल भक्षी प्राणी इन पदार्थों को छोड़कर घास-फूंस नहीं खाते। इसी प्रकार पेय पदार्थों की वार्ता है। भयङ्कर से भयङ्कर प्यास लगने पर भी कोई पशु मद्य, शराब, सोडावाटर, चाय, काफी और भंग आदि नहीं पीते। परन्तु यह अभिमानी मनुष्य संसार का एक विचित्र प्राणी है, इसको भक्ष्य अभक्ष्य का कोई विचार नहीं, पेय अपेय की कोई मर्यादा नहीं। यह खान-पान में सर्वथा उच्छृङ्खल है, खान-पान में इसका कोई नियम नहीं। यह सर्वभक्षी बना हुवा है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सबको चटकर जाता है। इसका उदर (पेट) सभी प्राणियों का कबरिस्थान बना हुआ है। निरपराध निर्बल प्राणियों को मारकर खाने में इसने न जाने कौनसी वीरता समझ रक्खी है। राष्ट्रिय कवि श्री मैथिली-शरण गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारत-भारती में इसका सच्चा चित्र खींचा है—

वीरत्व हिंसा में रहा जो मूल उनके लक्ष्य का,
कुछ भी विचार उन्हें नहीं है आज भक्ष्याभक्ष्य का।
केवल पतंग विहङ्गमों में जलचरों में नाव ही,
बस भोजनार्थ चतुष्पदों में चारपाई बच रही॥

अर्थात् जो अपने शत्रुओं का वध (हिंसा) युद्ध में करके अपनी वीरता दिखाते थे, आज वे भक्ष्याभक्ष्य का कुछ विचार न करके निर्दोष प्राणियों को मारकर अभक्ष्य भोजन करने के लिये अपनी वीरता दिखाते हैं। पापी मनुष्य ने सब प्राणी खा लिये। केवल आकाश में उड़ने वालों में कागज के पतंग, जल में रहने वालों में लकड़ी की नाव और चौपाये पशुओं में केवल चारपाई को यह नहीं खा सका। यही इसके भक्ष्य नहीं बने। इन तीनों को छोड़कर शेष सबको इसने अपने पेट में पहुंचा दिया। इसी के फलस्वरूप मनुष्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक रोगी वा दुःखी रहता है।

महर्षि दयानन्द जी ने इस सत्य को इस प्रकार प्रकट किया है—

"क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहें वे अधर्म को छोड़, धर्म अवश्य करें। क्योंकि जिन मिथ्या भाषणादि पापकर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुख रूप फल को देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करें।

महर्षि दयानन्द जी ने दुःख का कारण असत्य भाषणादि कर्मों को लिखा है। अहिंसा का स्थान यमों में सत्य से प्रथम है। क्योंकि—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी त्याग), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच यमों में महर्षि योगिराज पतञ्जलि ने अहिंसा को सर्वप्रथम स्थान दिया है। इसे सार्वभौम धर्म माना है।

महर्षि दयानन्द जी ने बहुत बलपूर्वक लिखा है—

"जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं को मारनेवाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुये हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ोतरी होती जाती है।

जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गायादि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे"

क्योंकि सभी पृथिवी के मनुष्य वेदाज्ञा तथ ऋषियों के धर्मोपदेशानुसार चलते थे। इसीलिये "सुखस्य मूल धमः" सुख का मूल धर्म है, महर्षि चाणक्य की इस आज्ञानुसार धर्माचरण करने से सब सुखी थे, रोगरहित और पूर्ण स्वस्थ थे। स्वस्थ मानव ही पूर्णतया सुखी होता है। स्वस्थ रहने के लिये ऋषियों ने भोजन के विषय में तीन नियम बनाये हैं।

एक बार ऋषियों की शरण में जाकर किसी ने जिज्ञासा की और तीन बार प्रश्न किया कि रोग रहित पूर्ण स्वस्थ कौन रहता है?

प्रश्न—"कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्"

उत्तर—"ऋतभुक्, हितभुक्, मितभुक्"।

कौन नीरोग रहता है? कौन नीरोग रहता है? कौन नीरोग रहता है?

उत्तर (१) जो धर्मानुसार भोजन करता है, (२) हितकारी भोजन करता है (३) और जो मितभोजन=भूख रखकर अल्पाहार करता है वह सर्वथा रोगरहित और पूर्ण स्वस्थ वा सुखी रहता है।

मांसाहार कभी धर्मानुसार मनुष्य का भोजन नहीं हो सकता। मांसाहारी ऋतभुक् नहीं हो सकता। क्योंकि बिना किसी प्राणी के प्राण लिये मांस की प्राप्ति नहीं होती और किसी निरपराध प्राणी को सताना, मारना, उसके प्राण लेना ही हिंसा है और हिंसा से प्राप्त हुई भोग की सामग्री भक्ष्य नहीं होती। महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छलकपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।"

(२) हितभुक् जो हितकारी पदार्थों का भोजन करता है, वह हितभुक् सदा स्वस्थ रहता है।

(३) जो भूख रखकर थोड़ा मिताहार करता है, वह पूर्ण स्वस्थ होता रहता है। इस विषय में महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि बल पराक्रमवृद्धि और आयु वृद्धि होवे, उन तण्डुल, गोधूम, फल, मूल कन्द दूध, घी मिष्ट आदि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मित आहार भोजन करना, सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन उनका सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित हैं, उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।"

अतः जो पदार्थ हिंसा से किसी को सताकर, मारकर, छल कपट, अधर्म से प्राप्त हों उनका कभी सेवन नहीं करना चाहिये।। ईश्वर सभी प्राणियों का पिता है। सब उसके पुत्र तुल्य हैं, वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य को अपने पुत्र पशु पक्षी आदि की हिंसा करके खाने की आज्ञा कैसे दे सकता है तथा अपने पुत्रों की हिंसा से कैसे प्रसन्न हो सकता है। महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"क्या एक को प्राण कष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है? जो माता पिता एक लड़के को मरवाकर दूसरे को खिलाते तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं, ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाया है।"

सत्यार्थप्रकाश

वे आगे लिखते हैं—'जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है? मनुष्य का स्वाभाविक गुण दया है और दयाहीन हिंसक होकर ही मनुष्य मांस

खाने के लिये अन्य प्राणियों के प्राण लेता है तथा इसको मांस खाने को मिलता है। मांसाहारी अपने इस स्वाभाविक गुण दया, प्रेम, सहानुभूति को तिलाञ्जलि देकर शनैः शनैः सर्वथा अत्याचारी, निष्ठुर निर्दयी,, कसाई बन जाता है। फिर उन को हजारों पशुओं के गले को छुरी से काटते हुए तनिक भी दया नहीं आती।"

मनु जी महाराज ने तो आठ कसाई लिखे हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥५१॥

सम्मति देनेवाला, अंग काटनेवाला, मारनेवाला, खरीदनेवाला, बेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला खानेवाला ये सब घातक हैं। अर्थात् मारनेवाले आठ कसाई होते हैं। ऐसे हिंसक कसाई अधर्मियों के लोक परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। मनु जी लिखते हैं—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते॥

जो अहिंसक निर्दोष प्राणियों को खाने आदि के लिये अपने सुख की इच्छा से मारता है वह इस लोक और परलोक में सुख नहीं पाता। क्योंकि पापी अधर्मी को कभी सुख नहीं मिलता। पाप का ही तो फल दुःख है। हिंसक से बढ़कर पापी कोई नहीं होता। इसीलिये 'अहिंसा परमो धर्मः" अहिंसा को परम धर्म कहा है और इसीलिये धर्मों में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान है।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् मांस की प्राप्ति नहीं होती और प्राणियों का वध या हिंसा स्वर्गकारक

नहीं है अर्थात् दुःखदायी है। अतः मांस छोड़ देना चाहिये। निरपराध प्राणियों के प्राण लेकर अपने पेट को भरना अथवा अपनी जिह्वा का स्वाद पूर्ण करना घोर अन्याय और महापाप है और पाप का फल दुःख है। सभी महापुरुषों, सन्त-साधु, महात्माओं तथा धार्मिक ग्रन्थों में मांसाहार की निन्दा की है तथा इसे वर्जित तथा निषिद्ध ठहराया है।

वेद में मांस भक्षण निषेध

वैसे तो मानने को वेद, धम्मपद, तोरेत, जबूर, इञ्जील, बाईबल और कुरान सभी धार्मिक ग्रन्थ माने जाते हैं। किन्तु वेद को छोड़कर सब ग्रन्थ ग्रन्थ भिन्न भिन्न मत और सम्प्रदायों के हैं। इन सम्प्रदायों के पुराने से पुराने ग्रन्थ महाभारत काल से पीछे के ही हैं। इन की आयु चार हजार वर्ष से अधिक किसी की भी नहीं है। यथार्थ में ये ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ की कोटि में नहीं आते। इनको किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ कहा जासकता है, फिर भी इनके इन सम्प्रदायों में से भी अधिकतर सम्प्रदायों के ग्रन्थों में मांस भक्षण और हिंसा का निषेध किया है। यथार्थ में सच्चे धर्म का आदि स्रोत वेद ही है। इसलिये मनु जी महाराज ने "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" धर्म को जानना चाहें, उनके लिये परम प्रमाण श्रुति अर्थात् वेद ही है, यह माना है।

जब जब परमात्मा सृष्टि की रचना करता है, तब तब अपने परम पवित्र ज्ञान को प्राणिमात्र के कल्याण के लिये प्रकाशित करता है। वेद के किन्हीं एक दो सिद्धान्तों को पकड़ कर चतुर लोग अपने ग्रन्थों की रचना करके नये नये सम्प्रदायों और मतों को खड़ा कर लेते हैं और उन्हीं को धर्म का नाम दे देते हैं। यथार्थ में धर्म अनेक नहीं होते, धर्म और सत्य एक ही होता है। जैसे दो और दो चार ही होते हैं, न्यून वा अधिक नहीं होते। इसलिये महर्षि दयानन्द ने "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों)

का परम धर्म है" यह लिखकर इस सत्यता पर अपनी मोहर लगाई है।

बाह्य अन्धकार को दूर करने के लिये परम दयालु प्रभु ने जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश दिया है इसी प्रकार मानव के आन्तरिक अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के लिये ज्ञानरूप वेदज्योति का प्रकाश किया है। इस बात को सभी एकमत होकर स्वीकार करते हैं कि वेद सब से प्राचीन हैं। यहां तक कि विदेशी विद्वानों के मतानुसार भी संसार के पुस्तकालय में सब से प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ वेद ही माने जाते हैं। वहां लिखा है

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथम जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥

यजुर्वेद अ० १२, मन्त्र ४० ॥

इन ऊन रूपी बालोंवाले भेड़, बकरी, ऊंट आदि चोपाये, पक्षी आदि दो पगवालों को मत मार।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥

अथर्ववेद १। १६ ४ ॥

यदि हमारी गो, घोड़े पुरुष का हनन करेगा=तो तुझे शीशे की गोली से वेध देंगे, मार देंगे जिससे तू हननकर्ता न रहे। अर्थात् पशु, पक्षी आदि प्राणियों के वध करनेवाले कसाई को वेद भगवान् गोली से मारने की आज्ञा देता है।

वेदों में मांस खाने का निषेध इस रूप में किया है। मांस बिना पशु-हिंसा के प्राप्त नहीं होता है। अश्व, गो, अजा (बकरी) अवि (भेड़) आदि नाम लेकर पशुमात्र की हिंसा का निषेध किया है और द्विपद शब्द से पक्षियों के मारने का भी निषेध है।

पशुओं को पालने की आज्ञा सर्वत्र मिलती है—

"यजमानस्य पशून् पाहि" यजुर्वेद १।१॥

यजमान के पशुओं की रक्षा करो।

मनुस्मृति के प्रमाण पहले दे चुके हैं। मांस न खाने का फल सौ अश्वमेध यज्ञों के समान बताया है।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्। मनु ५।५३

जो सौ वर्ष पर्यन्त प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करता है और जो जीवन-भर मांस नहीं खाता है दोनों को समान फल मिलता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है:—

सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा।
गृहेऽपि निवसन् विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ॥

आचाराध्याय ७।१८० ॥

विद्वान् विप्र सर्वकामनाओं तथा अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ऐसा गृहस्थी जो मांस नहीं खाता, वह घर पर रहता हुआ भी मुनि कहलाता है।

इस युग के दिवाकर महर्षि देव दयानन्द ने मांस भक्षण का सर्वथा निषेध किया है। वे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

(१) मद्य मांस आदि मादक द्रव्यों का पीना—ये छः स्त्री को दूषित करनेवाले दुर्गुण हैं।

(२) मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें।

(३) जो मादक और हिंसा कारक (मांस) द्रव्य को छोड़ के भोजन करने हारे हों, वे हविर्भुज (हवन यज्ञ शेष खानेवाले) हैं।

(४) जब मांस का निषेध है तो सर्वत्र ही निषेध है।

(५) हां मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है।

(६) इनके मद्य मांस आदि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें।

(७) हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें।

वेदादि शास्त्रों में मांस भक्षण और मद्य सेवन की आज्ञा कहीं नहीं, निषेध सर्वत्र है। जो मांस खाना कहीं टीकाओं में मिलता है, वह वाम-मार्गी टीकाकारों की लीला है, इसलिये उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस खाना नहीं लिखा।

महाभारत में मांस भक्षण निषेध

सुरां मत्स्यान्मधु मांसमासवकृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥

शान्तिपर्व २६५।६॥

सुरा, मछली, मद्य, मांस, आसव, कृसरा आदि खाना धूर्तों ने प्रचलित किया है, वेद में इन पदार्थों के खाने-पीने का विधान नहीं है।

अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतां वरः।

आदिपर्व ११।१३॥

किसी भी प्राणी को न मारना ही परमधर्म है।

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम।
अनृतं वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात्कथञ्चन॥

कर्णपर्व ६९।२३॥

मैं प्राणियों का न मारना ही, सबसे उत्तम मानता हूं। झूठ चाहे बोल दे, पर किसी की हिंसा न करे।

यहाँ अहिंसा को सत्य से बढ़कर माना है। असत्य की अपेक्षा हिंसा से दूसरों को दुःख अधिक होता है। क्योंकि सबको जीवन प्रिय है। इसीलिये यह महान् आश्चर्य है कि—

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

शान्तिपर्व २५६।२२ ॥

जो स्वयं जीने की इच्छा करता है वह, दूसरों को कैसे मारता है? प्राणी जैसा अपने लिये चाहता है, वैसा दूसरों के लिये भी वह चाहे। कोई मनुष्य यह नहीं चाहता कि कोई हिंसक पशु वा मनुष्य मुझे, मेरे बालबच्चों, इष्टमित्रों वा सगे सम्बन्धियों को किसी प्रकार का कष्ट दे वा हानि पहुंचाये अथवा प्राण ले लेवे, वा इनका मांस खाये। एक कसाई जो प्रतिदिन सैंकड़ों वा सहस्रों प्राणियों के गले पर खञ्जर चलाता है, आप उसको एक बहुत छोटी और बारीक सी सूई चुभोयें, तो वह इसे कभी भी सहन नहीं करेगा। फिर अन्य प्राणियों की गर्दन काटने का अधिकार उसे कहां से मिल गया? प्राणियों का हिंसक कसाई महापापी होता है। महाभारत में कहा है—

घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते ।
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद् वर्षाणि मज्जति ॥

अनुशासनपर्व ९४।४॥

मारनेवाला, खानेवाला, सम्मति देनेवाला ये सब उतने वर्ष दुःख में डूबे रहते हैं, जितने कि मरनेवाले पशु के रोम होते हैं। अर्थात् मांसाहारी घातकादि लोग बहुत जन्मों तक भयङ्कर दुःखों को भोगते रहते हैं। मनु महाराज के मतानुसार आठ कसाई इस महापातक के बदले दुःख भोगते हैं।

हिंसा न करें

धर्मशीलो नरो विद्वानीहकोऽनहीकोऽपि वा ।
आत्मभूतः सदालोके चरेद् भूतान्यहिंसया ॥

शान्तिपर्व २६५।८ ॥

धार्मिक स्वभाववाला पुरुष इस लोक को चाहता हो वा न चाहता हो सबको समान समझ कर किसी की हिंसा न करता हुआ संसार यात्रा करे । किसी को सताये नहीं ।

"मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे"

'हम सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें' । इस वेदाज्ञानुसार सब प्राणियों को मित्रवत् समझकर सेवा करे, सुख देवे । इसी में जीवन की सफलता है । इसी से यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं ।

मांसाहारी लोगों द्वारा हानि

मांसाहारी लोग उपकारी पशु पक्षियों का अपने स्वार्थवश नाश करके जगत् की बड़ी भारी हानि करते हैं । किसी कवि ने एक भजन द्वारा इसका बड़ा अच्छा दिग्दर्शन कराया है । श्री पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी महाराज का यह बड़ा प्रिय भजन है । मांसाहार का खण्डन करते हुये वे इसे बहुत प्रेम से उत्सवों में गाया करते हैं ।

यह भजन वैदिक भावनाओं के अनुरूप है ।

दोहा—जो गल काटै और का अपना रहै कटाय ।
साईं के दरबार में बदला कहीं न जाय ॥

मांसाहारी लोगों ने भारत में विघ्न मचा दिये ॥ टेक
गोमाता-सा दुःखी ना कोई, घी और दूध कहां से होई ।

सारा कर्म बलबुद्धि खोई, दुर्बल निपट बना दिये ।
दुष्टाचारी लोगों ने ॥ मांसाहारी०…… ……।१।
हय श्वानों का पालन करते, गोरक्षा में चित्त ना धरते ।
हिंसा करत जरा नहीं डरते, गल पर छुरे चला दिये ।
आफत तारी लोगों ने ॥ मांसाहारी०……।२।
जिनसे है दुनियां का पालन, उन्हें मार क्या सुख हो लालन।
फंस गई प्रजा विपत के जाल, उत्तम पशु खपा दिये ।
क्या मन धारी लोगों ने ॥ मांसा०……।३।
मृगों को डार नजर न आवें, दरियावों में मीन न पावें ।
मोर कहां से कूक सुनावें, मार मार के ढा दिये ।
विपता डारी लोगों ने ॥ मांसाहारी……।४।
कबूतरों के गोल रहे ना, तीतर करत किलोल रहे ना ।
शुक मैना बेमोल रहे ना, हरियल गर्द मिला दिये ।
पंडुकी मारी लोगों ने ॥ मांसाहारी……।५।
अजा, भेड़, दुम्बे ना छोड़े, उनके होगये जग में तोड़े ।
कहां से बनेंगे ऊनी जोड़े, महगे मोल विका दिये ।
कोनी ख्वारी लोगों ने ॥ मांसाहारी……।६।
पाढे नील गाय हन डारे, ससे स्यार मुर्ग गोह विचारे ।
गरीब कच्छप नटों ने मारे, ऐसे त्रास दिखा दिये ।
दुःख दे भारी लोगों ने ॥ मांसाहारी……।७

अब सब जन्तु निबड़ जायेंगे, सोचो तो फिर ये क्या खायेंगे।
कह घीसा सब सुख नसायेंगे, सो कारण मैं बता दिये ।
सुन लई सारी लोगों ने ॥ मांसाहारी······।८

इसी प्रकार चौधरी घीसाराम जी (मेरठ) निवासी का एक अन्य भजन भी मांस भक्षण निषेध पर है । वह इस प्रकार है—

दोहा—बकरो खात पात है, ताको काढो खाल ।
जिसे वाम मारग कहें, विषय पाप का भोग ॥
मांस मांस सब एक से, क्या बकरी क्या गाय ।
यह जग अन्धा हो रहा, जान बूझ के खाय ॥

टेक—नर दोजख में जाते हैं, बेखता जीव को मार के ।
और के गलेपर छुरी धरे हैं, नहीं संग दिल दया करे हैं ।
पापी कुष्ठी होय मरें हैं । दिल से रहम बिसार के ।
गल अपना कटवाते हैं ॥१॥
जो गल काट के बहिश्त में जाना, काट कुटुम्ब को भी पहुंचाना ।
और खुदा को दोष लगाना। उसका नाम पुकार के ॥
दु:ख देख न घबराते हैं ॥२॥
घास खांय सो गल कटवावें । मांस खांय वो किस घर जावें ।
समझें ना बहुविध समझावें । खुश होते सिर तार के ।
करनी का फल पावे हैं ॥३॥

घांस मांस सब हैं इकसारी। क्या बकरी क्या गाय बिचारी
खान बूझ खाते वर नारी। रूप दुष्ट का धार के।
तज मूत्र मणि खाते हैं ॥४॥
बढ जाते हैं रोग बदन में। ना कुछ ताकत बढती तन में।
हे ईश्वर दे ज्ञान उरम में। बख्शें ज्ञान विचार के।
जन घोसा यश गाते हैं ॥५॥

उर्दू कविता

एक उर्दू के कवि ने अपने भावों को निम्न प्रकार से प्रकट करते हूये निर्दोष प्राणियों पर दया करने की याचना (अपील) की है:—

पशुओं की हड्डियों को, अब ना तबर से तोड़ो।
चिड़ियों को देख उड़ती, छर्रे न इन पै छोड़ो॥
मजलूम जिसको देखो, उसको मदद को दोड़ो।
जख्मी के जख्म सीदो और टूटे उज्व जोड़ो॥
बागों में बुलबुलों को फूलों को चूमने दो।
चिड़ियों को आसमां में आजाद घूमने दो॥
तुमही को यह दिया है, इक होसिला प्रभु ने।
जो रस्म अच्छी देखो, उसको लगो चलाने।
लाखों ने मांस छोड़ा, सब्जी लगे हैं खाने।
और प्रेम रस जल से हरजा लगे रचाने॥
इन में भी जान समझ कर इन को जकात दे दो।
यह काम धर्म का है तुम इसमें साथ दे दो।

बौद्ध और जैन मत

ये दोनों ही सम्प्रदाय "अहिंसा परमो धर्मः" प्राणियों की हिंसा न करने को परमधर्म मानते आये हैं यथार्थ में इनका मूल सिद्धान्त ही हिंसा न करना है। जैनी तो इसका पालन बहुत कट्टरता और निष्ठापूर्वक आज तक करते चले आरहे हैं। इसलिये वे मांस को खाना तो दूर रहा, उसका स्पर्श तक नहीं करते। यहां तक कि कितने ही जैनी तो लहसुन, प्याज, शलजम आदि तक का भी सेवन नहीं करते। इनके जितने भी तीर्थङ्कर हुये हैं, वे सभी क्रियात्मक रूप से मांस भक्षण के विरोधी थे। इनके सभी ग्रन्थों में मांस भक्षण का निषेध पाया जाता है।

अनेक बौद्ध ग्रन्थों में भी मांस भक्षण का निषेध पाया जाता है। बौद्धों की अहिंसा से ही प्रभावित होकर महाराजा अशोक ने कलिङ्ग के महायुद्ध में लाखों योद्धाओं को जब अपनी आंखों से मरते देखा तो उस ने इस वीभत्स दृश्य को देखकर महात्मा बुद्ध की अहिंसा की शिक्षा लेकर युद्ध को लेकर की जानेवाली दिग्विजय का सर्वथा त्याग कर दिया और स्वयं मांस खाना छोड़ दिया और उसकी पाकशाला में प्रतिदिन हजारों पशुओं का वध करके जो मांस पकता था, उसको सर्वथा और सर्वदा के लिये बन्द कर दिया।

महात्मा बुद्ध के जीवन में भी यह घटना आती है कि उन्होंने एक मेमने का चीत्कार सुनकर अपने समाधि सुख का त्याग कर दिया और महाराज बिम्बसार के यज्ञ में जो सहस्रों निरपराध पशुओं की बलि दी जा रही थी, वहां उपदेश करके उसको सर्वथा निषिद्ध करवा दिया।

इससे सिद्ध होता है कि बौद्ध और जैन मत में भी हिंसा को सर्वथा निषिद्ध तथा बहुत बुरा माना गया है।

मांसाहार पर सन्तों की सम्मति

कबीर सन्तों में मुख्य माने जाते हैं। उनकी कबीर बीजक यह मेख है—

काजी काज करहु तुम कैसा। घर घर जाहु करावहु भैसा ॥
बकरी मुरगो किन फरमाया। किसके हुकम तें छुरी चलाया ॥
दर्द न जानें पीर कहावें। वैतां पढ पढ जग समुझावें ॥
कह हि कबीर सैयाद कहावें। आप सरीखे जग कबुलावें ॥

रमैनी ४९

साखी दोहा

दिन को रोज़ा रहत हो, रात काटत हो गाय।
यह तो खून वह वेदगी, क्योंकर खुशी खुदाय ॥
तरुक रोजा नमाज गुजारे, विसमिल बांग पुकारे।
इनको बहिस्त कैसक होई है, सांझे मुरगी मारे ॥
हिन्दू को दया, मेहर तुरकन की, दूनों घर सो त्यागो
वे हलाल वे झटका मारें, आग दोनों घर लागी ॥
भूला वे अहमक नादाना, तुम हरदम रामहि न जाना।
बरबस आपजु पाय पछोरव, गला काट जिव आप लिया।
जियत जीव मुरदार करत है, ताको कहत हलाल किया ॥
जाहि मांस को पाक कहत है, ताकि उत्पत्ति सुन भाई।
रज बीरज से मांस उपानो, मांस नपाकी तुम खाई ॥
अपनी देख कहत नहीं अहमकु, कहत हमारे बढन किया।

उसकी खून तुम्हारी गरदन, जिन तुम को उपदेश दिया।
गयी स्याही आई सफेदी, दिल सफेद अजहुँ न हुवा।
रोजा नमाज बांग न कीजे, हुजरे भीतर बैठ मुवा।
धर्म कथै जंहि जीव वधै तहि अधर्म करु मेरे भाई।
जो तुमरे को ब्राह्मण कहिये वाको कहिये कसाई॥
तिह नर पापी शठ पहिचानो।
करत घास जे मांस स्वादहित, न जानत दर्द विराणो॥
जीव जनि मारहु वापुरा, सबका एकै प्राण।
तीरथ गये न बांचि हो कोटि होरा दे दान॥
जीव जनि मारहु वापुरा, बहुत लेत वै कान।
हत्या कबहु न छुटि है, कोटि न सुनहुँ पुरान॥

गुरु ग्रन्थ साहब में मांस भक्षण निषेध

जेरतु लगें कपड़े जामा होई पलीत।
जेरत पीवहि माणसा तिन कीउ निरमल चीत॥

(माझ की वार महला १. १, ६)

जीव बधहु सुधर्म कर थापहु अधर्म कहहु कत भाई।
आपस कउ मुनिकर थापहु काकउ कहहु कसाई॥

(राग मारु कबीर जी १)

हिंसा तऊ मनते नहीं छूटी जीभ दया नहीं पाली।

(राग सारङ्ग परमानन्द)

बेद कतेब कहहु मत झूठा झूठा जो न विचारे ।
जो सभमहि एक खुदाय कहत हउ तउ क्यों मुरगी मारै ॥
पकर जीभ अनिया देही नवासी मारा कउ विसमिल किया
जोति स्वरूप अनाहत लागी कहहु हलाल क्या किया ॥
(प्रभाती कबीर जी ४)

मजन तेग वर खूने कसे वे दरेग ।
तुरा नीज खूनास्त वा चराव तेग ॥
(जफरनामा गुरु गोबिन्दसिंह जी)

भाव—किसी की गरदन पर निस्संकोच होकर खड़ग न चला, नहीं तो। तेरी गरदन भी आसमानी तेग से काटी जायेगी ।

सींह पूजही बकरो मरदो होई खिड़ खिड़ हानि ।
सींह पुछे विसमाद होई इस औसर कित मांहो रहसी ॥
विनउ करेंदी बकरी पुत्र असाडे कोचन खस्सी ।
अक धतूरा खांदिया कुह कुह खल विणसी ॥
मांस खाण गल बढके तिनाड़ी कौन हो वस्सी ।
गरव गरीबी देह खेह खाज अकाज करस्सी ॥
जग आपा सभ कोई मरसी ॥

(भाई गुरदास दीयां वारां वार २५, १७)

कहे कसाई बकरी लाय लूण सीख मांस परोया ।
हस हस बोले कुहीदी खाधे अक हाल यह होया ॥

मांस खाण गल छुरीदे हाल तिनाड़ा कौण अलोवा ।
जीभे हन्दा फेड़ीयै खड दंदा मुंख भल वगोया ।।
(वार ३७, २१)

इस प्रकार मांस भक्षण का निषेध गुरुग्रन्थ साहब में किया है और मांसाहारियों की निन्दा की है । इसलिये गुरुग्रन्थ साहब को माननेवाले सभी सिख भाइयों को मांस खाना छोड़ देना चाहिये । जिस प्रकार कि नामधारी सिख मांस मदिरा से दूर रहते हैं ।

श्री सन्त गरीबदास

सन्त गरीबदास का जन्मस्थान ग्राम करौंथा तथा निवास स्थान छुडानी, जिला रोहतक (हरयाणा) में है । इन्होंने भी मांस भक्षण की खूब निन्दा की है । इनके ग्रन्थसाहब में इस प्रकार लिखा है—

गरीब मांस भखै विलाव ज्यूं बूझै बहिश्त बेकुण्ठ ।
साती कंवलौ घूम घोट चौकी बैठा कंठ ।।

गौ की महिमा

गौ हमारी मात है, पवित जिसका दूध ।
गरीब दास का जो कुटिल, कतल किया औजूद ।।
गौ हमारी अमां है ता पर छुरी व वाहि ।
गरीबदास घी-दूध कूं, सब ही आतम खाहि ।।
ऐसा खाना खाइये, माता के नहीं पीर ।
गरीबदास दरगह सरैं, गल में पड़े जंजीर ।।

यहाँ गोमांस भक्षण का निषेध किया गया है क्योंकि गो हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी की माता है, सभी को घी-दूध खावे के लिये देती है। जो सबको अच्छा लगता है। अतः गोमाता को पीड़ा देकर उसका माँस नहीं खाना चाहिए, किन्तु उसका घी-दूधादि ही खाना चाहिए। नहीं तो नरकगामी होना पड़ेगा।

सुरापान मद्यमांसाहारी, गमन करें भोगें पर नारी।
सत्तर जन्म कटत है शीशम, साक्षी साहिब है जगदीशम॥
झोटे,बकरे, मुरगे ताई, लेखा सब ही लेत गुसाई।
मृग, मोर मारे महमन्ता, अनाचार है जीव अनन्ता॥
तीत्र लवा बुटेरा चिड़िया, खूनी मारे बड़े अंगडिया।
अदले बदले लखे खे लेना, समझ देख सुन ज्ञान विवेका॥
(आदि पुराण १४,२२०)

मांस मदिरा का सेवन करनेवाला सब प्रकार के पशु पक्षियों को मार कर मांस खावेवाला भगवान् के दण्ड से कभी नहीं बच सकता।

मुसलमानों को उपदेश

हक हक करत है हुक्का, तीसों रोजे सावित रक्खा।
सांझ परी जब मुरगी मारी, उस दरगह में होगी ख्वारी॥
(वहदे का ग्रन्थ ३१, १०१)

जो दिखावे को तीस रोजे रखता और खुदा परस्त बनता है किन्तु सांझ होने पर मुर्गी मारकर खा जाता है। खुदा की दरगह में उसकी ख्वारी होती है। अर्थात् वह खूब दुःख भोगता है।

मुसलमानों को चेतावनी

लुवा, बुटेर, तीतर, हिते हेरिके,
खागये भूनकर मुरग चिड़िया ।
पकड़ हिलवान ततवारे तिके किये,
अजो नर भिसत के भरम पड़िया ॥
(रेखते २०, ११)

तीतर, बटेर, मुरग, चिड़िया आदि निर्दोष पक्षियों को भूनकर खाजाते हैं। इतना अत्याचार करके भी वहिश्त—स्वर्ग में जाने की इच्छा करते हैं, वे भरम में ही हैं। काम तो दुःख प्राप्ति के और इच्छा स्वर्ग को।

काजी और पीर को उपदेश

काफर कुफर करें बदफैला इन खाने से है मन मैला ॥४॥
मुरगी, बकरी, चिड़ी, बुटेरी, सूर, गऊ में एकें सेरी ॥५॥
जाके रूम-रूम देव अस्थाना, दूध-दही और घृत समाना ॥६॥
जामे ऐसे रतन रसायन भाई, सो बिसमल कहु किस फुरमाई॥७॥
कंठ करे नहीं साहिब राजी, मुरगी, बकरी मारे काजी ॥८॥
काजी मुल्ला अजब दीवाना, मुरदफरोश हलाहल खाना ॥९॥
गोसत खांहि करें कुफराना, जिन दरगह का महल न जाना १८
झोटे बैल हिते बहु भाई, सूर गऊ रख रुह सताई ॥४२॥
लवा कुठेरी तीतर भून्यां, खालक बिना कौन घर सूना ॥४३॥

मच्छी चिड़ी बहुत-सी मारी, रब की रूह करी तरकारी ।४४।
जंगली जीव हते खरगोसा, यौह सब महमद के सिर दोषा ।४५।
अजा भेड़ काटे हिलवाना, एक रहिया अब मानुख खाना ।४६।
रब की रूह करी ततबीरा, बहुर कहावें हजरत पीरा ।४६। ।
(नसोहतनामा ४२)

अर्थात् काजी, मुल्ला, पीर निर्दोष पशु-पक्षियों को मारकर खा जाते हैं। यह बहुत बड़ा कुफर पाप करते हैं फिर पीर काजी आदि कहलाते है। सारा पाप मुहम्मद के नाम पर करते है, सभी जीवों के प्राण लेकर कसाई बनते हैं। केवल मनुष्य का मांस खाना शेष है।

पारि पडा फोरि अंडा नहीं खाना खूब वे ।
गरीबदास त्रास जी की देखता महबूब वे ।।
(पारसी वैत ४६, ७१४)

इस प्रकार गरीबदास ने मांस भक्षकों को हरयाणे की भाषा में खूब बुरा कहा है। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने अपने पुस्तक "मांस मदिरा निषेध" में ये उद्धरण दिये हैं।

सन्त गरीबदास के पुत्र ब्रह्मचारी जैतरामदास ने अपने ग्रन्थ में चर्चा करते हुए हरयाणे के विषय में इस प्रकार लिखा है—

जीव हिंसा जहां नाहिं कराहीं, मदिरा भखै न कोई।
भक्ति रीति सब ही व्योहारा, विघ्न करै न कोई ।१।
दूध दही मन मान्या होई, कोई जन विरला खाली ।

अति सुन्दर नीकी नर काया, सबके मुख पर लाली ।२।
अन्न जल भोजन मन के भाये, भक्ति रीति सह नाना ।
संत समागम सेवन करहिं, गंगा जमना नहाना ।३।

इस प्रकार हरयाणे के लोग दूध, दही, घी, अन्न आदि सात्विक भोजन करते थे। कोई मांस मदिरा का सेवन नहीं करता था। सब का स्वास्थ्य आदर्श था। सब के शरीर पर तेज और कान्ति थी। सब अहिंसक साधु सन्तों तथा ईश्वर के उपासक थे।

इसी प्रकार महात्मा मस्तनाथ के जीवन चरित्र में लिखा है—

दया धर्म अरु भक्त रसीले।
लोग अहिंसक बहुत सुशीले ॥

हरयाणे के लोग मधुर स्वभाववाले, भक्त, दया धर्म से युक्त, सुशील थे। किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते थे। अर्थात् मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट नहीं देते थे।

विदेशी मांसाहारियों के आने से पूर्व सारे भारत देश की अवस्था हरयाणे के समान थी। मांस मदिरा का कोई सेवन नहीं करता था। विदेशी यात्री फाह्यान ने अपने यात्रा विवरण के पृष्ठ ३१ पर लिखा है—

"सारे देश में कोई अधिवासी न हिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन प्याज ही खाता है। जनपद में न तो लोग सूवर और मुर्गी पालते हैं न कहीं

सूनागार (बूचड़खाना मांस विक्रय की दुकान) है । न मद्य की दुकानें ।''

इससे यही सिद्ध होता है कि गुप्तकाल तक लोग निरामिष भोजी थे। कोई मांस मदिरा का सेवन नहीं करता था। सब का भोजन शुद्ध और पवित्र था । भोजन भी बड़ा सस्ता था । एक मास के भोजन पर २॥=) ही व्यय होता था । क्योंकि अन्न, घी, दूध बहुत सस्ता था । मांसाहार का नाम तक मुसलमानों के आने तक यहां कोई जानता न था । हरयाणा राज्य तो सृष्टि से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक परम पवित्र निरामिषभोजी रहा । अब हमारी सरकार तथा अंग्रेज महाप्रभु की कृपा से मांसाहार का कुछ प्रचार फौजियों तथा अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में होने लगा है । इसी से दुःखी होकर कवि नत्थासिंह ने यह भजन बनाया है । जो इस प्रकार है ।

प्राणियों के शत्रु मांसाहरी मनुष्य

पक्षी और चौपाये सब मार-मार कर खाये,
फिर भी हाथ मार कर छाती पर इन्सान कहाये
लाज नहीं आये ।

इसकी जबान के चस्के नहीं ईश्वर के भी बसके,
दया धर्म की बांध के मुशकें रखदी इसने कसके,
सुन भाई सुन, कुछ तो सुन, पाप कमाये छोड़ के पुण्य
बन के मर्द बहादुरी अपनी मुर्गी पर दिखलाये
लाज नहीं आये ॥१॥

यह नर था अजब निराला, रुतबा था इसका आला,
प्रभु ने इसको भेजा था, सब जीवों का रखवाला,
सुन भाई सुन, कुछ तो सुन, तूने धारे ऐसे गुण,
अपने से कमजोर बशर का, खून तलक पी जाये,
लाज नहीं आये ॥२॥

यह समझदार है इतना क्या बतलाऊं कितना,
मजहब की खातिर लड़ने को, नित्य नया जगाये फितना,
सुन भाई सुन, कुछ तो सुन, तेरी बदौलत अक़ल के घुण,
अल्लाह, ईश्वर, वाह गुरु तीनों, आपस में टकराये,
लाज नहीं आये ॥३॥

तू ने तो जी भर खाया, इतना ख्याल न आया,
कई रोज से भूखा तेरा, बैठा है हमसाया,
सुन भाई सुन, कुछ तो सुन, रेशम पहने तू चुन चुन,
पास तेरे निर्धन का बालक, कफन बिना जल जाये,
लाज नहीं आये ॥४॥

यह भजन मांसाहारियों के विषय में श्री कवि नत्थासिंह ने बनाया है इसे श्री बेगराज जी आर्योपदेशक बड़े झूम झूम कर गाते हैं। इस से मांस भक्षण से निरपराध पशुपक्षियों की नृशंस हिंसा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मांसाहार मानव की शरीर रचना के प्रतिकूल है साथ ही हिंसा के बिना मांस भी प्राप्त नहीं होता। प्रतिकूल भोजनार्थ हिंसा करना महा-मूर्खता है।

मानव की शरीर रचना और भोजन

संसार में अनेक प्रकार के जीव देखने में आते हैं, जिनके भोजनों में विभिन्नता है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि भोजन की विभिन्नता के अनुसार ही उनकी शरीर रचना में भी विभिन्नता है।

१ फलाहारी जीव

बन्दर गोरिल्ला आदि कन्द फूल फल ही खाते हैं। (१) इनके दांत चपटे एक दूसरे से मिले हुए और उनकी दाढ भोजन की पिसाई का कार्य करने योग्य होती हैं।

(२) इनके जबड़े छोटे, तीनों ओर, सब ओर हिल सकने वाले अर्थात् ऊपर नीचे, दायें बायें, इधर उधर हिलनेवाले होते हैं।

(३) ये घूंट भरकर जल पीते हैं।

(४) शरीर के भाग हाथ पैर में गोल नखों वाली अंगुलियां होती हैं।

(५) इनके पेट में अन्तड़िया इनके शरीर की लम्बाई से बारह गुणी लम्बी होती हैं।

२ वनस्पति खानेवाले जीव

घास फूस आदि वनस्पति खानेवाले गाय भैंस एवं घोड़ा आदि हैं।

(१) इनके दांत चपटे, मिले हुए. किन्तु थोड़ी थोड़ी दूर पर लगे हुए होते हैं। इनके जबड़े पिसाई-कुटाई करने के सर्वथा अयोग्य होते हैं।

(२) जबड़े लम्बे तथा ऊपर नीचे और इधर उधर दायें बायें हिलने वाले होते हैं।

(३) ये घूंट भरकर जल पीते हैं।

(४) इनके गोल नखदार खुर होते हैं।

(५) इनके पेट की अन्तड़ियां अपने शरीर की अपेक्षा तीस गुणा लम्बी होती हैं।

३ मांसाहारी जीव

जो केवल मांस खाते हैं उनमें शेर, चीता, भेड़िया आदि हैं।

(१) इनके दांत लम्बे, नोकवाले, थोड़ी-थोड़ी दूर पर और दाढ़े आरे के समान चीरनेवाली होती हैं, जबड़े लम्बे तथा एक ओर (आगे को) कैंची के समान हिलनेवाले होते हैं।

(२) ये जीभ से जल पीते हैं तथा पीते समय लप-लप की आवाज सुनाई पड़ती है।

(३) इनके हाथ पांव लम्बे, पंजे नोकदार नखोंवाले होते हैं।

(४) इनके पेट की अन्तड़ियां अपने शरीर की लम्बाई की अपेक्षा तीन गुनी लम्बी होती हैं।

४ मिश्रितभोजी जीव

कुछ जीव दोनों प्रकार का मिला जुला भोजन करनेवाले होते हैं, जैसे कुत्ता, बिल्ली आदि। इनके शरीर की रचना भी प्रायः मांसाहारी जीवों से मिलती जुलती है।

मांसाहारी और निरामिषभोजी जीवों में अन्तर

मांसाहारी	शाकाहारी
१ रात को जागना और दिन में छिप-कर रहना।	१ रात को विश्राम करना और दिन में जागना।
२ तेजी और बेचैनी का होना।	२ तेजी और बेचैनी का न होना।

३ अपना भोजन बिना चबाये निगल जाते हैं।	३ अपना भोजन चबा-चबाकर खाते हैं।
४ दूसरों को सताना और मारकर खाना।	४ दयाभाव और दूसरे पर कृपा करना।
५ अधिक परिश्रम के समय थकावट शीघ्र होती है और अधिक थक जाते हैं, जैसे शेर, चीता, भेड़िया आदि।	५ सन्तोष सहनशीलता और परिश्रम से कार्य करना तथा अधिक थकावट से दूर रहना जैसे घोड़ा, हाथी, ऊंट बैल आदि।
६ मांसाहारी एक बार पेट भरकर खा लेते हैं फिर एक सप्ताह वा इस से भी अधिक समय तक कुछ नहीं खाते सोये पड़े रहते हैं।	६ मनुष्य दिन में अनेक बार खाता है। घास और शाक सब्जी खानेवाले प्राणी दिनभर चरते, चुगते और जुगाली करते रहते हैं।
७ मांसाहारी जीवों के चलने से आहट (शब्द) नहीं होती।	७ अन्न और घास खानेवालों के चलने से आहट होती है।
८ मांसाहारी प्राणियों को रात के अन्धेरे में दिखायी देता है।	८ अन्न और घास खाने वालों को रात के अन्धेरे में दिखाई नहीं देता।
९ मांसाहारी जीवों की अन्तड़ियों की लम्बायी अपने शरीर की लम्बाई से केवल तीन गुनी होती है।	९ फलाहरी जीवों की अन्तड़ियों की लम्बाई अपने शरीर की लम्बाई से बारहगुनी तथा घास फूस खाने वाले प्राणियों की अन्तड़ियां उनके शरीर से तीस गुनी तक होती हैं।
१० चलने फिरने से शीघ्र हांफते हैं।	१० दौड़ने से भी नहीं हांफते।
११ मांसाहारी प्राणियों के वीर्य में बहुत अधिक दुर्गन्ध आती है।	११ अन्न तथा शाकाहारी प्राणियों के वीर्य में साधारणतया अधिक दुर्गन्ध नहीं आती।

१२ मांसाहारी प्राणियों के बच्चों की आँखें जन्म के समय बन्द होती हैं जैसे शेर, चीते, कुत्ते, बिल्ली आदि के बच्चों की।

१२ अन्न तथा शाकाहारी प्राणियों के बच्चों की आँखें जन्म के समय खुली रहती हैं जैसे मनुष्य, गाय भेड़, बकरी आदि के बच्चों की।

१३ मांसाहारी जीव अधिक भूख लगने पर अपने बच्चों को भी खा जाते हैं। (फिर मांसाहारी मनुष्य इस कुप्रवृत्ति से कैसे बच सकता है।) जैसे सर्पिणी, जो बहुत अण्डे देती है, अपने बच्चों को अण्डों से निकलते ही खा जाती है। जो बच्चे अण्डों से निकलते ही भाग दौड़ कर इधर-उधर छिप जाते हैं, उनसे साँपों का वंश चलता है।

१३ सब्जी खानेवाले प्राणी चाहे मनुष्य हों अथवा पशु, पक्षी, भूख से तड़फ कर भले ही मर जावें किन्तु अपने बच्चों की ओर कभी भी बुरी दृष्टि से नहीं देखते। साँप के समान मांसाहारी मनुष्य आदि दुर्भिक्ष में ऐसा करते देखे गये हैं कि वे भूख में अपने बच्चे को भून कर खागये।

१४ बिल्ली बिलाव से छिपकर बच्चे देती है और इन्हें छिपाकर रखती है। यदि बिलाव को बिल्ली के नर बच्चे मिल जायें तो उन्हें मार डालता है। मादा (स्त्री) बच्चों को छोड़ देता है कुछ नहीं कहता।

इसी प्रकार पक्षियों में तीतरी भी छिपकर अण्डे देती है। यदि नर तीतर अण्डों पर पहुँच पाये तो वह नर बच्चों के अण्डे तोड़ डालता है। मादा (स्त्री) अण्डों को रहने देता है।

१४ शाकाहारी प्राणियों में न माता बच्चों को खाती है, न पिता बच्चों को मारता है, न बच्चे माता-पिता को मार कर खाते हैं।

बिच्छू के बच्चे माता के ऊपर चढ़ जाते हैं माता को खा कर बच्चे पल जाते हैं माता मर जाती है।

१५ मांसाहारी जीवों के घाव देरी से अच्छे होते हैं और ये अन्न या शाक खाने वाले प्राणियों की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में घाव के कारण मरते हैं।

१५ निरामिषभोजी शाकाहारी जीवों के घाव बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। और मांसाहारियों की अपेक्षा कम मरते हैं।

१६ पक्वाशय (मेदा) बहुत सरल (सादा) जो बहुत तेज भोजन को बड़ा शीघ्र पचाने के योग्य होता है जिगर अपने शरीर के अनुपात से बहुत बड़ा और इसमें पित्त बहुत अधिक होता है। मुंह में थूक की थैलियां बहुत छोटी, स्वच्छ जिह्वा, बच्चे को दूध पिलाने के स्तन पेट में। ये आगे की ओर तथा सब ओर देखते हैं।

१६ पक्वाशय (मेदा) धारा खाने वाला, जिसमें बहुत हल्की खुराक को धीरे धीरे पचाने के गुण हैं। जिगर अपने शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा होता है।

जिह्वा स्वच्छ बच्चे को दूध पिलाने के स्तन छाती पर और प्राणी साधारणतया आगे को देखते हैं और बिना गर्दन मोड़े इधर उधर नही देख सकते।

१७ मांसाहारी पशु पक्षियों को नमक की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। इन्हें बिना नमक के कोई कष्ट नहीं होता।

१७ शाकाहारी प्राणी और मनुष्य सामान्य रूप से नमक खाये बिना जीवित नहीं रह सकते या जीवन में कठिनाई अनुभव करते हैं।

इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि मनुष्य की शरीर रचना तथा उपर्युक्त गुण, कर्म, स्वभावानुसार मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य के शरीर की रचना भी उन प्राणियों से मिलती है जो फल,फल, शाक आदि खाते हैं। जैसे बन्दर गोरेल्ला आदि, किन्तु मांसाहारी शेर, चीते, भेड़िया आदि से नहीं मिलती। बन्दर के शरीर की रचना और मनुष्य के शरीर की रचना परस्पर बहुत मिलती है, इनमें समता है। हाथ पैरों की समता और शरीर के दूसरे अंग, विशेषकर अन्तड़ियां पूर्णतया मनुष्य के समान हैं। मनुष्य की अन्तड़ियों की लम्बाई जिसमें से होकर भोजन पचते समय जाता है। घुमाव खाती हुई ३३ फुट के लगभग होती हैं। यद्यपि मांसाहारी जीवों की अन्तड़ियों में घुमाव तनिक भी नहीं होता। उनकी अन्तड़ियाँ लम्बी अथवा सीधी थैली सी होती हैं।

मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं

हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि मानव शरीर की रचना की तुलना मांसाहारी पशुओं की शरीर रचना से करने पर यह भली-भांति पता चलता है कि भगवान् ने मनुष्य का शरीर मांस खाने के लिये नहीं बनाया। इस अध्याय में यह सिद्ध किया जायेगा कि शरीर ही नहीं किन्तु मनुष्य का स्वभाव भी मांस खाने का नहीं है।

संसार में प्रत्यक्ष देखने में आता है कि जितने भी मांसाहारी जीव हैं चाहे वे स्थलचर, जलचर अथवा नभचर हों, वे सभी अपने शिकार जन्तु जीव को बिना चबाये ही निगल जाते हैं। और उसे पचा लेते हैं। जैसे जल में रहने वाली मछलियां, मेंढक आदि अपने से छोटी तथा निर्बल मच्छली आदि को पूरी की पूरी निगल जाते हैं। इनकी हड्डी पसली, चमड़ी आदि कुछ भी शेष नहीं छोड़ते। इसी प्रकार भूमि पर रहने वाले मांसाहारी पशु, पक्षी अपने से छोटे तथा निर्बल प्राणियों को सभी निगल

ही जाते हैं, यह प्रतिदिन देखने में आता है। किन्तु जो बड़े मांसाहारी जीव जन्तु शेर, चीता भेड़ियादि हैं, जब वे अपने शिकार मृगादि पर आक्रमण करते हैं तो पहले उसकी ग्रीवा (गर्दन) तोड़कर उसका रक्त चूस जाते हैं और यह प्राणी मर जाता है। तब उस मरनेवाले पशु का खून ठण्डा होकर शरीर में जम जाता है तो सिंह आदि उसको खुरच कर खा जाते हैं। यहां तक कि शरीर की पतली-पतली हड्डी पसली को भी चट कर जाते हैं। बहुत मोटी हड्डियां ही बचती हैं। इसी प्रकार बिल्ली भी चूहे को नोच नोच कर सारे को अपने पेट में पहुंचा देती है। सभी मांसाहारी जीवों में यही दृष्टिगोचर होता है, जब वे दूसरे प्राणी को खाते हैं तो उसका खून भी कहीं गिरा हुवा नहीं मिलता। इसी प्रकार घास, फूस, हरा या सूखा चारा खानेवाले गायादि पशु अपना भोजन प्रायः सारा का सारा निगल जाते हैं। पुनः अवकाश मिलने पर उसको जुगाली करके चबाकर हजम कर लेते हैं, अपने भोजन को व्यर्थ नष्ट नहीं होने देते। इसी प्रकार जो मांसाहारी पेड़ हैं वे अपने शिकार अन्य जीव को सम्पूर्ण को खा कर पचा लेते हैं केवल उनकी हड्डियां पीछे पड़ी रह जाती हैं। इस प्रकार के पेड़ अफ्रीकादि में देखने में आते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि कोई भी मांसाहारी जन्तु यहां तक कि पेड़ पौधे भी अपने भोजन के भाग को व्यर्थ नहीं जाने देते। परमात्मा ने इन सब का स्वभाव इस प्रकार का बनाया। है

अब आप मांसाहरी मनुष्यों को देखें। अपने खाने के लिये ये जिन जीवों को मारते हैं, उनका, रक्त, चमड़ा, हड्डियां, मलादि शरीर का ¾ (तीन चौथाई) भाग छोड़ देते हैं, वे इसे नहीं खाते। वह व्यर्थ नष्ट होता है। अर्थात् एक मन जीवित जन्तु का मांस केवल १० सेर बनता है। यदि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस होता तो वह भी अन्य प्राणियों के समान सारे के सारे को चट कर जाता। भगवान् की सृष्टि में यह भूल कैसे हो सकती थी कि यह अन्य सारे मांस खानेवाले जीवों को अपने

शिकार को सारा का सारा खानेवाला बनाता किन्तु मनुष्य एक या दो मन में से केवल दस या बीस सेर ही खाता और शेष को व्यर्थ नष्ट होने के लिये छोड़ देता।

यथार्थ में बात यह है कि मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं। वह हड्डी आदि को चबा नहीं सकता। निगल कर उसे हजम नहीं कर सकता। उसके शरीर की रचना और स्वभाव के यह सर्वथा विरुद्ध है। इसके दांत मांस को काट नहीं सकते। इसके गले या मुख का द्वार इतना भीड़ा (तङ्ग) होता है कि किसी बड़े जीव का तो क्या यह सामान्य छोटे जन्तुओं को भी नहीं निगल सकता। कच्चा मांस खाना और उसे पचाना तो इसके स्वभाव या प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। जंगली मनुष्यों को छोड़ कर संसार में सभी मांसाहारी मनुष्य मांस के टुकड़ों को छोटा-छोटा करके उसे स्वादिष्ट बनाकर खाते हैं। न कच्चा मांस खा सकते हैं, न चबा ही सकते हैं। हजम करने की बात तो कोसों दूर की है। क्योंकि यह मांस का भोजन मानव का स्वाभाविक आहार नहीं है।

स्थलचर मांसाहारी शेर, चीता, भेड़ियादि पशुओं के बहुत बड़े समूह देखने में नहीं आते। वे बड़े बड़े जंगलों में भी थोड़ी थोड़ी संख्या में ही मिलते हैं। "शेरों के लंहडे नहीं" के अनुसार इनके बड़े झुण्ड नहीं होते। जिन पशुओं को ये हिंस्र पशु खाते हैं, वे मृगादि जंगलों में बड़ी भारी संख्या में होते हैं।

केवल जलचर तो इसके अपवाद हैं, किन्तु वहां एक बात इससे भी भिन्न है वह यह की जल में रहनेवाले सभी बड़े जीव छोटे जीवों को खा जाते हैं। वहां मांसाहारी जीवों तथा उनके भक्ष्य (शिकार) की पृथक् श्रेणी नहीं। यदि बड़ी मछली या कोई अन्य जल का बड़ा प्राणी मर जावे तो उसे सब छोटे जन्तु चट कर जाते हैं। वहां भक्षक और भक्ष्य पृथक् नहीं

हैं। किन्तु पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओं में इससे भिन्नता देखने में आती है। घास आदि पर निर्वाह करने वाले भेड, बकरी, गाय, भैंस, मृग, बारहसिंघा आदि पृथक् हैं वे मांस नहीं खाते। मांस खानेवाले शेर, चीते और भेड़िये आदि की श्रेणी इनसे पृथक् है, जो उपर्युक्त पशुओं की हिंसा करके मांस ही खाते हैं।

मांस तथा अन्न दोनों को खानेवाले बिल्ली, कुत्ते तथा पक्षी पृथक् हैं। मनुष्यों में भी यह देखने में आता है कि पर्याप्त मनुष्य ऐसे हैं जो अन्न, फल, घी, दूध, शाक, सब्जी इत्यादि को खाकर ही अपना निर्वाह करते हैं। वे मांस, मछली, अण्डा आदि को स्पर्श भी नहीं करते और इस पृथ्वी पर ऐसे दानवों की भी कोई न्यूनता नहीं है अन्न, फल, शाकादि के अतिरिक्त मांस, मछली, अण्डादि भी खाते हैं। यदि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस ही हो तो मांसाहारियों को केवल मांस ही खाना चाहिये था, वे अन्नादि क्यों खाते ?

यथार्थ बात यह है कि वे कुसङ्ग वा कुशिक्षा के कारण मांस खाने लगते हैं। खाते-खाते उनका अभ्यास पक जाता है, फिर अच्छी शिक्षा और सत्सङ्ग मिल जाये तो वे छोड़ भी देते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है। नहीं तो कोई भी मनुष्य मांस को खाये बिना जीवित नहीं रह सकता था। जैसे मांसाहारी पशु संख्या में थोड़े होते हैं, किन्तु मनुष्य तो अरबों की संख्या में इस पृथ्वी पर रहता है। उसके लिये कितने पशु-पक्षी मांस पूर्त्यर्थ प्रतिदिन चाहिएं। इतनी भारीसंख्या में दुःख देनेवाले मनुष्यरूपी मांसाहारी पशुओं के झुण्ड भगवान् क्या उत्पन्न कर सकता है ? नहीं, कभी नहीं। इसीलिये तो मनुष्य फल-फूल शाक-सब्जी अन्नादि सब खाता है, केवल मांस पर निर्वाह नहीं करता, क्योंकि मांस मानव का स्वाभाविक भोजन नहीं।

मनुष्य का यदि स्वाभाविकभोजन मांस होता तो प्रत्येक मांसाहारी मनुष्य मांसाहारी पशुओं शेर, चीते के समान अपने शिकार को आप स्वयं मारकर खाता जो सर्वथा असम्भव है। क्योंकि इस महान् पाप को गिने चुने हुये अभ्यस्त कसाई बूचड़ करते हैं। यदि प्रत्येक मांसाहारी मनुष्य को स्वयं जीव मार कर मांस खाना पड़े तो अधिक से अधिक बल्कि ७५ प्रति-मनुष्य मांस खाना छोड़ दें। क्योंकि जब कोई प्राणी मारा जाता है तो वह तड़फता है, पीड़ा से बिलबिलाता है। उस भयङ्कर दृश्य को सुहृद् व्यक्ति देख भी नहीं सकता, मारना तो बहुत दूर की बात है। क्योंकि मनुष्य के स्वभाव में प्रेम, दया, सहृदयता, सहानुभूति और परसेवा है। दूसरे को सताना, तड़पा-तड़पाकर मारना यह साधारण मनुष्य के वश की बात नहीं। इस प्रकार वध होते हुए भयङ्कर बीभत्स दृश्य को देखकर ही आधे से अधिक मांसाहारी मनुष्य भी बेसुध (बेहोश) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। किसी प्राणी की मृत्यु इतनी दुःखदायी नहीं होती जितना कि मनुष्य के हाथों कत्ल होना दुःखदायी होता है। मनुष्य तो सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। जीव इससे प्रेम करते हैं और यह जीवों से प्रेम करता है। लोग तो शेर, चीतों तक को प्रेम से वश में करके पाल लेते हैं। उपगृहस्थभी श्री विद्याचरण जी शुक्ल के यहां मैंने एक सिंह का पाला हुआ बच्चा स्वतन्त्र रूप से खुला बैंच पर बैठे देखा। चिड़ियाघरों में शेर शेरनी अपने भोजन देनेवाले से प्रेम करने लगते हैं। लखनऊ के चिड़िया घर में एक शेरनी के छोटे चार बच्चे थे। उनको भोजन करानेवाला सेवक पिंजरे में हाथ डालकर शेरनी के उन बच्चों को हाथ से स्पर्श करके प्रेम करते मैंने कई बार देखा। शेरनी पास में खड़ी रहती थी, वह भी कुछ नही कहती थी। इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्य का स्वाभाविक गुण प्रेम है। कसाई जो बकरे आदि पशुओं को मारने के लिये पालता है, वह जब उन पशुओं को मारने के लिये वधशाला में ले जाता है, तब वे उसके प्रेम के वशीभूत उसके पीछे पीछे चले जाते हैं। वे नहीं जानते कि उनके साथ क्या होने

जाता है ? वे अपने उस वधक स्वामी पर विश्वास करते हैं। उसके प्रेम में धोखा है, इसका उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं है। वे धोखे में आकर मारे जाते हैं। और यह सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य उनके साथ विश्वासघात करने में कुछ भी शङ्का लज्जा नहीं करता।

स्नेह, दया, सहानुभूति और परोपकार सब धर्मों का चरम लक्ष्य है। इस तक पहुंचना ही सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है। क्योंकि जो मनुष्य स्वयं जीना चाहता है और दुःख में औरों से यह आशा करता है कि और मेरी सेवा करें तो उसका अपना कर्त्तव्य भी तो दूसरे प्राणियों की सेवा करना तथा उन्हें जीवित रहने देना है। हम किसी को जीवन नहीं दे सकते तो हमें किसी का जीवन लेने का क्या अधिकार है ?

मांस खाने से तथा हिंसा करने से मनुष्य का हृदय निर्दयी और कठोर हो जाता है, जैसे कसाई को दया नहीं आती। सहानुभूति प्रेम के लिये दूसरे के दुःख में दुःखी होने वाला कोमल, संवेदनशील हृदय चाहिये। मांसाहारी का हृदय कठोर निर्दयी हो जाता है। निर्दयता मनुष्य का स्वाभाविक गुण नहीं। इसलिये मांस खानेवालों की अपेक्षा मारनेवाले कसाई बहुत कम संख्या में होते हैं। एक हजार मांसाहारी लोगों के पीछे एक बूचड़ कसाई होता है जो जीवों का वध करता है। इसीलिये मांसाहारियों को यह ज्ञान नहीं होता कि वे जो मांस खा रहे हैं, उसकी प्राप्ति के लिये कितना दुष्कृत्य, निर्दयतापूर्ण और बीभत्स अत्याचार किया गया है। बलवान पशुओं का हृदय वध होने, चमड़ा उतारने, पेट से सब आंतादि निकाल देने के पश्चात् भी बहुत देर तक धड़कता रहता है। वध होने के भयंकर दृश्य को बहुत थोड़े लोग देख सकते वा सहन कर सकते हैं। इसे देखलें तो आधे से अधिक मांस खाना छोड़ जायें। इसलिये मांस खाना और बात है तथा जीवों का वध करना और बात है। जब मांस बाजार में बिकता है तो यह मृत शरीर का मांस मिट्टी

के रूप में ही दीखता है। खानेवालों के सम्मुख वधशाला का कष्ट अथवा संवेदना का दृश्य प्रस्तुत नहीं करता। नहीं तो मांसाहारी मांस खाना छोड़ देवें। कसाई का हृदय अत्यन्त कठोर और मृतप्रायः हो जाता है। वह मनुष्य को समय पड़ने पर मारने में देर नहीं लगाता। मांसाहारी भी शनैः शनैः निर्दयी हो जाता है। मानव तथा उसके गुण उससे विदा हो जाते हैं। इसलिये इस बुद्धिमान् प्राणी मनुष्य को केवल अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये अथवा उदरपूर्ति के लिये अपने स्वाभाविक गुणों दया, प्रेम, सहानुभूति को तिलाञ्जलि देकर निर्दोष जीवों का वध करना महापाप है। अतः मांसाहार से सर्वथा दूर रहना चाहिये। जो भोजन का कार्य अन्न, फल, फूल, शाक, सब्जी से पूर्ण हो सकता है और जो सुलभ, सस्ता, स्वास्थ्यप्रद तथा गुणकारी है उसके लिये व्यर्थ में अन्य प्राणियों को सताना, उनके प्राण ले लेना, इस सर्वश्रेष्ठ कहे जानेवाले मनुष्य को कैसे शोभा देता है? यह तो इसकी नृशंसता, निर्दयता और भयङ्कर अत्याचार का जीता जागता प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अतः इस अस्वाभाविक आहार मांस का मानव को सर्वथा तथा सर्वदा के लिये परित्याग कर देना चाहिये।

आहार के छः अंश

आधुनिक डाक्टर आहार के चार मुख्य तथा दो गौण ये छः अंश मानते हैं। (१) चिकनाई (२) लवण (नमक) (३) शक्कर (चीनी या निशास्ता) (४) प्रोटीन (५) विटेमिन्ज (६) जल।

१- स्नेह (चिकनाई)—

पशुओं में चर्बी के रूप में पाई जाती है। जैसे सूअर के मांस (चर्बी) में चिकनाई ४८.६ प्रतिशत सब से अधिक होती है। गाय, बकरे तथा मुर्गी

कि बच्चे के मांस, सफेद मछली और अण्डे की सफेदी तथा जर्दी में ३.६ प्रतिशत से लेकर ३०.०० प्रतिशत तक पाई जाती है। किन्तु गाय, भैंस आदि के दूध तथा फलों (मेवों) में ५ प्रतिशत से लेकर ६७.७ प्रतिशत चिकनाई पाई जाती है।

निम्न चीजों में चिकनाई की मात्रा इस प्रकार पाई जाती है—

गाय के दूध में	४-००	प्रतिशत
भैंस के ,, ,,	७-४५	,,
गाय तथा भैंस के मक्खन में	८५.००	,,
गाय तथा भैंस के घी में	१००	,,
अखरोट	५७.४	,,
बादाम	५३. ००	,,
नारियल	३६. ००	,,
ब्राजील नट	६७.७	,,

इस प्रकार मांस की अपेक्षा स्नेह चिकनाई अखरोट आदि फलों तथा घृतादि में अधिक मात्रा में पायी जाती है और यह चिकनाई वा स्नेह मांस की चर्बी की चिकनाई की अपेक्षा गुणों में अधिक श्रेष्ठतर होती है। इस विषय में प्रसिद्ध डाक्टर मिस के. गोरवेज एल. एम. एस. ने "मांसाहार की खराबियां" नामक लेख में लिखा है—

"जब मांस की चर्बी को चबाया जाता है तब एक तैल जैसा पदार्थ बन जाता है। परन्तु जब गिरीदार फलों को चबाया जाता है तो मलाई समान पदार्थ बन जाता है, यह घोल जल में शीघ्र घुल जाता है इसलिये पचानेवाले रस और नमक इस पर प्रभाव डालते हैं।

वनस्पति तथा घी, दूध की चिकनाई मांस चर्बी की चिकनाई से बहुत अधिक शुद्ध होती है। मांस चर्बी की चिकनाई में टाक्सिन बिषाक्त

(जहरीले) पदार्थ पाये जाते हैं। फलों तथा घृत की चिकनाई में विष नहीं होता। गाय का घृत विष के प्रभाव को नष्ट करनेवाला होता है। इसलिये मांस अथवा चर्बी बहुत अशुद्ध और घटिया होती है, अतः वह अभक्ष्य= खाने योग्य नहीं होती।"

२- लवण—

आहार का द्वितीय आवश्यक अंश लवण (नमक) है। यह मांस की अपेक्षा शाक, पालक, बथुआ आदि में बहुत अधिक पाया जाता है और मांस में जो लवण होता है वह अपूर्ण और घटिया न्यून गुणोंवाला होता है। शाक-सब्जियों में पाये जानेवाले लवण रुधिर को शुद्ध करते हैं। और पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं। यूरिक ऐसिड (विषाक्त क्षार) के दुष्ट प्रभाव को नष्ट करने में अत्यन्त हितकर हैं। जो जल फलों, शाक-सब्जियों और नारियल आदि में पाया जाता है, वह स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभकारी है। और रोगों के कारणों को दूर करनेवाला है। डाक्टरी मतानुसार रोगोत्पादक कीटाणुओं से बिल्कुल रहित होता है। जो विषाक्त पदार्थ (टाक्सिन) मांस में होता है, वन फल सब्जी आदि में नहीं होता।

इस विषय में अधिक देखना चाहें वे मेरी बनाई "भोजन" पुस्तक में देख सकते हैं।

३- शक्कर—

आहार का आवश्यक तृतीयांश मीठा वा चीनी अथवा शक्कर (निशास्ता) मांस में सर्वथा पाया ही नहीं जाता। मांस की तालिका जो भोजन के गुणों वा अंशों की बनायी जाती है उसमें यह कोष्ठ (खाना) सर्वथा रिक्त (बिल्कुल खाली) छोड़ा जाता है। इसलिये मांस का सर्वांश अपूर्ण और गन्दा है। यही कारण है कि बहुतसे व्यक्ति जो मांस नहीं खाते, वे बहुत काल तक स्वस्थ रहकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

किन्तु केवल मांस पर कोई मनुष्य दीर्घजीवी स्वस्थ नहीं रह सकता। उस को शाक-भाजियों, फलों, दूध और अन्नादि की अपने स्वास्थ्य को अच्छा रखने के लिये आवश्यकता पड़ती है।

४- प्रोटीन—

भोजन का चौथा आवश्यकांश डाक्टर लोग प्रोटीन (Protein) वा नाइट्रोजनस् (Nitrogenous) को मानते हैं। इस विषय में मांसाहारी लोगों का यह विचार है कि मांस में प्रोटीन का अंश बहुत मात्रा में पाया जाता है और फलादि वनस्पति के आहार में प्रोटीन का अंश थोड़ी मात्रा में पाया जाता है। अतः निरामिष भोजी शाकाहारी लोग इस विषय में बहुत घाटे में रहते हैं अर्थात् आहार का यह आवश्यक अंश प्रोटीन उनको पूर्ण मात्रा में नहीं मिलता।

इस विषय में संसार के बहुत प्रसिद्ध डाक्टर ऐम ईण्ड हेडे कोपन हैगन जिन्होंने भोजन के विषय में बहुत खोज की है उनका यह मत है कि "मनुष्य को पूर्णस्वस्थ रहने के लिये अधिक से अधिक दो औंस प्रोटीन की आवश्यकता होती है। किन्तु मांस के भीतर यह अंश साढे चार औंस पाया जाता है। जो कि आवश्यकता से प्रायः अढ़ाई गुणा अधिक है। शरीर की वृद्धि के लिये बच्चों को युवकों की अपेक्षा प्रोटीन की अधिक आवश्यकता होती है। माता के दूध में जितना प्रोटीन होता है उससे यही अनुमान लगता है कि दो औंस प्रोटीन बालक को शारीरिक विकास के लिये चाहिए। यदि युवक के लिये भी यही मान लें उस को भी दो औंस प्रोटीन चाहिये जो कि यथार्थ मे अधिक है। उसकी पूर्ति शाकाहार से हो जाती है।

जो मांसाहारी मांस के भोजन द्वारा अधिक प्रोटीन खा जाते हैं। उस विषय में डाक्टर हेण्ड हेडे और प्रोफेसर फिशर ने यह अनुभव सिद्ध किया है कि जो दो औंस प्रोटीन से अधिकमात्रा में मांसाहारी सेवन करते

है वह यह ही नहीं कि व्यर्थ है किन्तु वह मांसपेशियों (पट्ठों) की शक्ति के लिये बहुत हानिकारक है और अनेक रोगों को उत्पन्न करनेवाला है ।

डाक्टर हेग का भी उपरोक्त ही मत है वे तो यह भी लिखते हैं कि "स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिये यदि बहुत प्रोटीन चाहिए तो यह भी निश्चित बात है कि वनस्पति में मांस की अपेक्षा यह पदार्थ अधिक पाया जाता है । वे लिखते हैं कि बादमों, मूंग मसूरादि दालों तथा मटरादि में मांस की अपेक्षा प्रोटीन की प्रतिशत मात्रा अधिक पायी जाती है । और पनीर (दूध का एक भाग) इस दृष्टि से मांस से आगे है । वे लिखते हैं कि बादामादि मग्ज़ और अन्न हमारी शारीरिक आवश्यकताओं से बढ़कर प्रोटीन रखते हैं । और वनस्पति प्रोटीन पाशविक प्रोटीन से बहुत श्रेष्ठतर है । क्योंकि वनस्पति प्रोटीन में विषैला पदार्थ नहीं होता । इसलिये अन्तड़ियों में जाकर वनस्पति प्रोटीन इतना शीघ्र सड़ने नहीं लगता, जितना शीघ्र मांस का प्रोटीन द्विगुण शीघ्रता से सड़ने लगता है । क्यों कि मनुष्य की अन्तड़ियां मांसाहारी पशुओं की अपेक्षा बहुत लम्बी होती हैं । इसलिए पशुवों के मांस का सड़ा हुआ अंश अधिक काल तक अन्तड़ियों में पड़ा रहता है और वह सड़ान्ध = दुर्गन्ध उत्पन्न करता है जो रोगोत्पत्ति का कारण है ।

जो प्रोटीन अन्न, मटर, दालों, दूध और पनीर में पाये जाते हैं, वे ही यथार्थ में प्रोटीन हैं, वे अत्यन्त बलशाली हैं । और शीघ्र पचते हैं यह प्रोटीन बड़ी सस्ती तथा सरलता से मिल जाती है और मांस की प्रोटीन से अधिक गुणकारी है तथा शुद्ध है एवं इसमें विषाक्त पदार्थ (यूरिक ऐसिड) भी नहीं है । इसको प्राप्त करने के लिये पशुवों को कष्ट देने, उनके प्राण लेकर जीवन से वञ्चित करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और मांस का प्रोटीन वानस्पत्य प्रोटीन की अपेक्षा बहुत ही घटिया और अशुद्ध विषाक्त आहार है ।

ये ऊपर लिखे गये आहार के चार मुख्यांश हैं। दो गौण ये हैं—

५- विटेमिन्ज—

इसी प्रकार डाक्टर लोग विटेमिन्ज को आहार का आवश्यक अंश मानते हैं। शरीर को बनाने और उसे जीवित रखने के लिये जो सहायक भोजनांश हैं उन को विटेमिन्ज कहते हैं। गाय के दूध में ये शरीर के पोषकांश (विटेमिन्ज) सब से अधिक होते हैं।

६- जल—

ठोस आहार को पतला करने और रुधिर को प्रवाहित करने के कार्य को चलाने के लिये जल की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त दोनों पदार्थ दूध, शाक, सब्जी, फल आदि मे ही मांस की अपेक्षा अधिक और शुद्ध मात्रा में मिलते हैं। अतः जल और विटेमिन्ज के लिये मांसाहार की सर्वथा आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार उपर्युक्त भोजन के छः अंश जिनको डाक्टर शरीर के पोषण के लिये आवश्यक मानते हैं वे मांस की अपेक्षा फल, शाक, सब्जी, अन्न, घृत, दूधादि में ही अधिक तथा शुद्ध रूप और उचित मात्रा में मिलते हैं। इसलिये मांसाहार सर्वथा अनावश्यक है।

मनुष्य का आहार क्या है?

सत्त्व, रज और तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। भोजन की भी तीन श्रेणियां हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि वा प्रवृत्ति के अनुसार भोजन करता है। श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता में कहा है :—

"आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः"

सभी मनुष्य अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार के भोजन को प्रिय मानकर भक्षण करते हैं। अर्थात् सात्विक वृत्ति के लोग सात्विक भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं। राजसिक वृत्तियालों को रजोगुणी भोजन रुचिकर होता है। और तमोगुणी व्यक्ति तामसभोजन की ओर भागते हैं। किन्तु सर्वश्रेष्ठ भोजन सात्विक भोजन होता है।

सात्विक भोजन

आयुः—सत्त्व—बलारोग्य—सुख—प्रीति—विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः॥

आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले, रसीले, चिकने स्थिर देर तक ठीक रहनेवाले एवं हृदय के लिये हितकारी ऐसा भोजन सात्विक जनों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल, वीर्य, आरोग्य आदि की वृद्धि हो, जो सरस, चिकना, घृतादि से युक्त, चिरस्थायी और हृदय के लिये बल शक्ति देनेवाला है वह भोजन सात्विक है।

सात्विक पदार्थ—गाय का दूध घी, गेहूं जौ, चावल, मूंग, मोठ उत्तम फल, पत्तों के शाक बथुवा आदि, काली तोरई, घीया (लौकी) आदि मधुर, शीतल, स्निग्ध सरस, शुद्ध पवित्र, शीघ्र पचनेवाले तथा बल ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सात्विक हैं। बुद्धिमान् व्यक्तियों का यही भोजन है।

गोदुग्ध सर्वोत्तम भोजन है। वह बलदायक आयुवर्द्धक, शीतल, कफ पित्त के विकारों को शान्त करता है। हृदय के लिये हितकारी है तथा रस और पाक में मधुर है। गोदुग्ध सात्विक भोजन के सभी गुणों से ओतप्रोत है।

प्राकृतिक आहार ही दूध है। मनुष्य जन्म के समय भगवान् ने मनुष्य के लिये माता के स्तनों में दूध का सुप्रबन्ध किया है। मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क का यथोचित पालन पोषण करने के लिये पोषक तत्त्व जिन्हें आजका डाक्टर विटेमिन्स (*Vitamins*) नाम देता है, सबसे अधिक और सर्वोत्कृष्ट रूप में दूध में पाये जाते हैं। जो शरीर के प्रत्येक भाग अर्थात् रक्त, मांस और हड्डी को पृथक् पृथक् शक्ति पहुँचाते हैं। मस्तिष्क अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इस अन्त:करण चतुष्टय को शुद्ध करके गोदुग्ध सब प्रकार का बल प्रदान करता है। इसमें ऐतिहासिक प्रमाण है :—

महात्मा बुद्ध तप करते-करते सर्वथा कृशकाय होगये थे। वे चलने फिरने में भी सर्वथा असमर्थ होगये थे। उस समय अपने वन के इष्ट देवता की पूजार्थ गोदुग्ध से बनी खीर लेकर एक वैश्य देवी सुजाता नाम की वहां पहुँची, जहां वट वृक्ष के नीचे महात्मा बुद्ध निराश अवस्था में (मरणासन्न) बैठे थे। उस देवी ने उन्हें ही अपना देवता समझा और उसी की पूजार्थ वह खीर उनके चरणों में श्रद्धापूर्वक उपस्थित कर दी। महात्मा बुद्ध बहुत भूखे थे, उन्होंने उस खीर को खालिया, उससे उन्हें ज्योति मिली, दिव्य प्रकाश मिला। जिस तत्त्व की वे खोज मे थे, उसके दर्शन हुए। निराशा आशा में बदल गई। शरीर और अन्तःकरण में विशेष उत्साह, स्फूर्ति हुई। यह उनके परम पद अथवा महात्मा पद की प्राप्ति की कथा वा गौरव गाथा है। सभी बौद्ध इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि सुजाता की खीर ने ही महात्मा बुद्ध को दिव्य दर्शन कराये। यह खीर उस देवी ने बड़ी श्रद्धा से बनाई थी। उनके घर पर एक हजार दुधारू गायें थी। उन सबका दूध निकलवाकर वह १०० गायों को पिला देती थी और उन १०० गौवों का दूध निकालकर १० गौवों को पिला देती थी और दस गौवों का दूध निकालकर १ गाय को पिला देती थी। उस गाय के दूध से खीर बनाकर वन के देवता की पूजार्थ ले

जाती। उसका यह कार्यक्रम प्रतिदिन चलता था। इस प्रकार से श्रद्धापूर्वक बनायी हुई वह खीर महात्मा बुद्ध के अन्तःकरण में ज्ञान की ज्योति जगाने वाली बनी।

छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है :—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार शुद्ध हो जाते हैं। अन्तःकरण की शुद्धि होने पर स्मरणशक्ति दृढ़ और स्थिर हो जाती है। स्मृति के दृढ़ होने से हृदय की सब गांठें खुल जाती हैं। अर्थात् जन्म मरण के बन्धन ढीले होजाते हैं। अविद्या अन्धकार मिटकर मनुष्य दासता की सब शृंखलाओं से छुटकारा पाता है और परमपद मोक्ष की प्राप्ति का अधिकारी बनता है। निष्कर्ष यह निकला कि शुद्धाहार से मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं। योगिराज श्री कृष्ण जी ने भी गीता में इसकी इस प्रकार पुष्टि की है :—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (६-१७)

यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, यथोचित कर्म करनेवाले, उचित मात्रा में निद्रा=सोने और जागनेवाले का यह योग दुःखनाशक होता है। शुद्ध आहार-विहार करनेवाले मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं।

इसी के अनुसार महात्मा बुद्ध को सुजाता की खीर से ज्ञान का प्रकाश मिला। दूसरी ओर इससे सर्वथा विपरीत हुआ, अर्थात् महात्मा

बुद्ध को उनके एक भक्त ने सूवर का मांस खिला दिया, यही उनकी मृत्यु का कारण बना। उनको भयंकर अतिसार (दस्त) हुये। कुशीनगर में उन्हें यह नश्वर शरीर छोड़ना पड़ा। मांस तो रोगों का घर है। और रोग मृत्यु के अनुचर सेवक हैं। अतः गोदुग्ध की बनी सुजाता की खीर सात्विक भोजन ने ज्ञान और जीवन दिया तथा तमोगुणी भोजन मांस ने महात्मा बुद्ध को रोगी बनाकर मृत्यु के विकराल गाल में धकेल दिया। इसीलिये प्राचीनकाल से ही गोदुग्ध को सर्वोत्तम और पूर्ण भोजन मानते आये हैं।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में सात्विक आहार की बड़ी प्रशंसा की है—

आहारः प्रणितः सद्यो बलकृद् देहधारणः।
स्मृत्यायुः-शक्ति-वर्णौजः-सत्त्वशोभाविवर्धनः ॥

(भाव० ४-१)

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति आयु, सामर्थ्य,, शरीर का वर्ण, कान्ति, उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है। आहार ही हमारा जीवन है। किन्तु सात्विक सर्वश्रेष्ठ है। और सात्विक आहार में गोदुग्ध तथा गोघृत सर्वप्रधान और पूर्ण भोजन है।

धन्वन्तरीय निघण्टु में लिखा है :—

पथ्यं रसायनं वल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं पुंस्त्वकृद् वातरक्तविकारानुत् ॥१६४॥

(सुवर्णादिः षष्ठो वर्गः)

गोदुग्ध पथ्य सब रोगों तथा सब अवस्थाओं (बचपन, युवा तथा वृद्धावस्था) में सेवन करने योग्य रसायन, आयुवर्द्धक, बलकारक, हृदय

के लिये हितकारी, मेधा बुद्धि को बनानेवाला, पुंस्त्वदायिक अर्थात् वीर्यवर्द्धक, वात तथा रक्तपित्त के विकारों रोगों को दूर करनेवाला है। गोदुग्ध को "सद्य. शुक्रकरं पयः" तत्काल वीर्य बलवर्द्धक लिखा है। इस प्रकार आयुर्वेद के सभी ग्रन्थों में गोदुग्ध के गुणों का बखान किया है और इसकी महिमा के गुण गाये हैं। अतः इस सर्वश्रेष्ठ और पूर्णभोजन का सभी मनुष्यों को सेवन करना चाहिये। यह सर्वश्रेष्ठ सात्त्विक आहार है। जैसे अपनी जननी माता का दूध बालक एक से दो या अधिक से अधिक तीन वर्ष तक पीता रहता है। माता के दुग्ध से उस समय बच्चा जितना बढ़ता और बलवान् बनता है उतना यदि वह अपनी आयु के शेष भाग में ४० वर्ष की सम्पूर्णता की अवस्था तक भी बढ़ता रहे तो न जाने कितना लम्बा और कितना शक्तिशाली बन जाये। माता का दूध छोड़ने के पश्चात् लोग गौ, भैंस, बकरी आदि पशुओं के दूध को पीते हैं। यदि केवल गोदुग्ध का ही सेवन करें तो सर्वतोमुखी उन्नति हो। बल, लम्बाई, आयु आदि सब बढ़ जावें। जैसे स्वीडन, डैनमार्क, हालैण्ड आदि देशों में गाय का दूध मक्खन पर्याप्त मात्रा में होता है। इसलिये स्वीडन में २०० वर्ष में ५ इंच कद बढ़ा है और भारतीयों के भोजन में पचास वर्ष से गोदुग्ध आदि की न्यूनता होती जारही है अतः इन तीस वर्षों में २ इंच कद घट गया। महाभारत के समय भारत देश के वासियों को इच्छानुसार गाय का घृत वा दुग्ध खाने को मिलता था। अतः ३०० और ४०० वर्ष की दीर्घ आयु तक लोग स्वस्थ रहते हुए सुख भोगते थे। महर्षि व्यास की आयु ३०० वर्ष से अधिक थी। भीष्म पितामह १७६ वर्ष की आयु में एक महान् बलवान् योद्धा थे। कौरव पक्ष के मुख्य सेनापति थे। अर्थात् सबसे बलवान् थे। महाभारत में चार पीढ़ियां युवा थीं और युद्ध में भाग ले रही थी। जैसे शान्तनु महाराज के भ्राता बाह्लीक अर्थात् भीष्म के पिता के चचा युद्ध में लड़ रहे थे। उनका पुत्र सोमदत्त तथा सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा और भूरिश्रवा के सब युद्ध में रत अपना युद्ध कौशल दिखा रहे थे। इस प्रकार चार पीढ़ियां युवा थीं। ६ फीट से कम लम्बाई (कद) किसी की नहीं थी। १०० वर्ष से

पूर्व कोई नहीं मरता था। यह सब गोदुग्धादि सात्त्विक आहार का ही फल था। सत्यकाम जाबाल को ऋषियों की गायों की सेवा करते हुए तथा गोदुग्ध के सेवन से ही ब्रह्मज्ञान हुवा। गोदुग्ध की औषध मिश्रित खीर से ही महाराज दशरथ के चार पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। इसीलिये गाय के दूध को अमृत कहा है। संसार में अमृत नाम की वस्तु कोई है तो वह गाय का घी दूध ही है।

गाय के घी के विषय में राजनिघण्टु में इस प्रकार लिखा है—

गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद्भाग्यत: ॥२०४॥

गौ का घी हव्यतम अर्थात् हवन करने के लिये सर्वश्रेष्ठ है और बहुगुण युक्त है, यह बड़े सौभाग्यशाली मनुष्यों को ही खाने को मिलता है। यथार्थ में गोपालक ही शुद्ध गोघृत का सेवन कर सकते हैं। गाय के घी को अमृत के समान गुणकारी और रसायन माना है। सब घृतों में उत्तम है। सात्त्विक पदार्थों में सबसे अधिक गुणकारी है। इसी प्रकार गाय की दही, तक्र, छाछ आदि भी स्वास्थ्य रक्षा के लिये उत्तम हैं। दही तक्र के सेवन से पाचनशक्ति यथोचित रूप में भोजन को पचाती है। इसके सेवन से पेट के सभी विकार दूर होकर उदर नीरोग होजाता है। निघण्टुकार ने कितना सत्य लिखा है— "न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्" तक्र का सेवन करनेवाला कभी रोगी नहीं होता। गौ के घी, दूध, दही, तक्र सभी अमृत तुल्य हैं। इसीलिये हमारे ऋषियों ने इसे माता कहा है। वेद भगवान् ने इस माता को "आप्यायध्वमघ्न्या" न मारने योग्य, पालन और उन्नत करने योग्य लिखा है अर्थात् गोमाता का वध वा हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये। इसकी सेवा तथा पालन पोषण सदैव माता के समान करना चाहिये। क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ सात्त्विक भोजन के द्वारा संसार का पालन पोषण करती है। इसकी नाभि से "अमृतस्य नाभि:" अमृतरूपी दूध झरता है। यह सात्त्विक आहार का स्रोत है।

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

(गीता १७।६)

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष दाह, जलन उत्पन्न करनेवाले नमक, मिर्च, मसाले, इमली, अचार आदि से युक्त चटपटे भोजन राजसिक हैं। इनके सेवन से मनुष्य की वृत्ति चंचल हो जाती है। नाना प्रकार के रोगों में ग्रस्त होकर व्यक्ति विविध दुःखों का उपभोग करता है और शोकसागर में डूब जाता है। अर्थात् अनेक प्रकार की आधि व्याधियों से ग्रस्त होकर दुःख ही पाता है। इसलिये उन्नति चाहनेवाले स्वास्थ्यप्रिय व्यक्ति इस रजोगुणी भोजन का सेवन नहीं करते। उपर्युक्त रजोगुणी पदार्थ अभक्ष्य नहीं किन्तु हानिकारक हैं। किसी अच्छे वैद्य के परामर्श से औषधरूप में इनका सेवन हो सकता है। भोजनरूप में प्रतिदिन सेवन करने योग्य ये रजोगुणी पदार्थ नहीं होते।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

(गीता १७।१०)

बहुत देर से बने हुए, नीरस, शुष्क, स्वादरहित दुर्गन्धयुक्त, बासी उच्छिष्ट = झूठे और बुद्धि को नष्ट करनेवाले भोजन तमोगुणप्रधानव्यक्ति को प्रिय होते हैं। जो अन्न गला सड़ा हुवा बहुत विलम्ब से पकाया हुवा, बासी, कृमि कीटों का खाया हुवा अथवा किसी का झूठा, अपवित्र किया हुवा,

रसहीन तथा दुर्गन्धयुक्त मांस, मछली, अण्डे, प्याज, लहसुन, शलजम आदि तामसिक भोजन हैं। इनका सेवन नहीं करना चाहिये। ये अभक्ष्य मानकर सर्वथा त्याज्य हैं। जो इन तमोगुणी पदार्थों का सेवन करता है वह अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाता है। उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, आयु क्षीण हो जाती है, बुद्धि, मन तथा आत्मा इतने मलिन हो जाते हैं कि उनको अपने हिताहित और धर्माधर्म का भी ज्ञान और ध्यान नहीं रहता। अत एव तमोगुणी व्यक्ति मलिन, आलसी, प्रमादी होकर पड़े रहते हैं। चोरी व्यभिचार आदि अनाचारों का मूल ही तामसिक भोजन है (इन तमोगुणी भोजनों में भी मांस, अण्डा, मच्छली सबसे अधिक तमोगुणी हैं। वैसे तो सभी तमोगुणी भोजन हानिकारक होने से सर्वथा त्याज्य हैं किन्तु मांस, मछली आदि तो सर्वथा अभक्ष्य हैं। इनको खाना तो दूर, कभी भूल कर स्पर्श भी नहीं करना चाहिये।)

संस्कृत में मांस का नाम आमिष है, जिसका अर्थ है—"अमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम्" जिस पदार्थ के भक्षण से मनुष्य रोगी होजाये, वह आमिष कहलाता है। आजकल सभी मानते हैं कि मांसाहारी लोगों को कैंसर, कोढ, गर्मी के सभी रोग, दांतों का गिरजाना मृगी, पागलपन, अन्धापन, बहरापन आदि भयङ्कर रोग लग जाते हैं। मांस मनुष्य को रोगी करनेवाला अभक्ष्य पदार्थ है। मनुष्य को इनसे सदैव दूर रहना चाहिये। इस विचार के माननेवाले लोग योरुप में भी हुये हैं।

अंग्रेजी भाषा के ख्यातनाम साहित्यकार बर्नार्डशाह ने मांस खाना छोड़ दिया था। वे मांस के सहभोज में नहीं जाते थे। मांस भक्षण के पक्षपाती डाक्टरों ने उनसे कहा कि मांस नहीं खाओगे तो शीघ्र मर जावोगे। उन्होंने उत्तर दिया मुझे परीक्षण कर लेने दो, यदि मैं नहीं मरा तो तुम निरामिषभोजी बन जावोगे अर्थात् मांस खाना छोड़ दोगे। बर्नार्डशाह लगभग १०० वर्ष की आयु के होकर मरे और मरते समय तक

स्वस्थ रहे उन्होंने एक वार कहा था " ....
से कहा जाता है, गोमांस खाओ तुम जीवित रहो। मैं ने अपनी वसीयत (स्वीकार पत्र) लिख दी है कि मेरे मरने पर मेरी अर्थी के साथ विलाप करती हुई गाड़ियों की आवश्यकता नहीं। मेरे साथ बैल, भेड़ गायें, मुर्ग और मछलियां रहेंगी क्योंकि मैं ने अपने साथी प्राणियों को खाने की अपेक्षा स्वयं का मरना अच्छा समझा है। हजरत नूह की किश्ती को छोड़ कर यह दृश्य सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण होगा।

इसी प्रकार आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० गुरुदत्त एम० ए० विद्यार्थी एक वार रोगी हो गये थे। डाक्टरों ने परामर्श दिया कि गुरुदत्त जी मांस खालें तो बच सकते हैं। पं० गुरुदत्त जी ने उत्तर दिया—कि यदि मैं मांस खाने पर अमर हो जाऊं, पुनः मरना ही न पड़े तो विचार कर सकता हूं। डाक्टर चुप होगये।

मांसाहार ही रोगोत्पत्ति का कारण

मांस में यूरिक ऐसिड नाम का एक विष सबसे अधिक मात्रा में होता है। इसको सभी डॉक्टर मानते हैं। मांसाहारी का शरीर उस अधिक विष को भीतर से बाहर निकालने में असमर्थ होता है, इसलिये मनुष्य के शरीर में वह विष (यूरिक ऐसिड) इकट्ठा होता रहता है। क्योंकि शाकाहारी मनुष्यों की अपेक्षा वह यूरिक ऐसिड मांसाहारी के शरीर में तीन गुणा अधिक उत्पन्न होता है। यह इकट्ठा हुया विष अनेक प्रकार के भयङ्कर रोगों को उत्पन्न करनेवाला बनता है।

मानचेस्टर के मेडिकल कालिज के प्रोफेसर हास ने अनुभव करके निम्नलिखित तालिका भिन्न-भिन्न पदार्थों में यूरिक ऐसिड के विषय में बनाई है।

नाना प्रकार के मांस	एक पौंड मांस में यूरिक ऐसिड की मात्रा
मछली का मांस	८.१५ ग्रेन
बकरी वा भेड़ का मांस	.७५ ,,
बछड़े का मांस	८.१४ ,,
सूवर का मांस	८.४८ ,,
गोमांस (कवाव)	१४.४५ ,,
जिगर के मांस में	१९.२६ ,,
मीठी रोटी	७०.४३ ,,

शाक आदि तथा अन्न में यूरिक ऐसिड

गेहूं की रोटी में	बिल्कुल नहीं
बन्द गोभी	,,
फूल गोभी	,,
चावल	,,
दूध, दही, मक्खन, तक्र	,,
आलू	.१४ ग्रेन
मटर	२.५४ ,,

यह तो सत्य है कि यह यूरिक ऐसिड नाम का विष कुछ सीमा तक तो मनुष्य के शरीर से बाहिर निकाला जा सकता है, किन्तु दिन रात में अर्थात् २४ घण्टे में १० ग्रेन यूरिक ऐसिड से अधिक मात्रा मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होजाये तो वह सारी नहीं निकलती और रक्त के प्रवाह (दोरे) के साथ मिलकर शारीरिक पट्ठों (मांसपेशियों) में इकट्ठी हो जाती है। यूरिक ऐसिड के इकट्ठा होने से इस विष से रक्त (खून) अशुद्ध (गन्दा) हो जाता है और खुजली फोड़े फुन्सी आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

यूरिक ऐसिड की अधिकता से पाचनशक्ति निर्बल हो जाती है, मलबद्धता (कब्ज) रहने लगती है। ऐसी अवस्था में यह विष अधिक हो जाने से दुर्बलता बढ़ती जाती है। इस दुर्बलता के कारण हुक्का, शराब आदि के सेवनार्थ प्रवृत्ति बढती है और नशों के व्यसनों में फसने से सर्वनाश ही हो जाता है। सभी नशे रोगों का तो घर ही है। नशे करने वाले शराब आदि में बहुत व्यय करते हैं, जिसकी पूर्ति के लिये समाज में रिश्वत, जूवा, चोरी, ठगी भ्रष्टाचार आदि का सहारा लेते हैं। जो मांस खाता है, वह शराब पीता है तथा जो शराब पीता है वह मांस खाता है। इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसके लिये मुस्लिम बादशाहों का इतिहास सन्मुख है। इसलाम में शराब हराम=सर्वथा वर्जित है। किन्तु भारतीय मुगल बादशाहों में बाबर से लेकर अन्तिम बादशाह बहादुरशाह तक देखलें, शायद ही कोई शराब से बचा होगा, क्योंकि वे मांसाहारी थे। मांस से शराब पीने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा दोनों से व्यभिचार फैलता है। इसी कारण मुगल बादशाहों के रणिवास= जनानखाने में बेगमों, लौंडियों तथा दासियों की सेना फौज की फौज) अथवा भेड़ों के समान भारी रेवड़ रहता था। इससे यही सिद्ध होता है कि मांस और शराब सब पापों की जड़ हैं।

मांस को पचाने के लिये भी शराब तक अनेक उत्तेजक पदार्थों, मसालों का सेवन करना पड़ता है। उसको स्वादिष्ट बनाने के लिये तथा उसकी सड़ांद=बदबू को दबाने के लिये भी गर्म मसाले सुगन्धित पदार्थ डाले जाते हैं, वे अनेक रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं। मांस बासी तथा सड़ा हुआ होता है, इसी कारण उसमें दुर्गन्ध होती है और दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खाने के योग्य नहीं होता, वह अभक्ष्य है। जहां मांस पकाया जाता है, वहाँ भयङ्कर दुर्गन्ध दूर तक फैल जाती है जो सर्वथा असह्य होती है। मांस खानेवालों के मुख से भी बहुत बुरी दुर्गन्ध सदैव आती रहती है।

यहां तक की उनके शरीर, पसीने और वस्त्रों से भी दुर्गन्ध आती रहती है, जिसको सहन करना बहुत ही कठिन होता है। और दुर्गन्धवाले सभी पदार्थ रोगों को उत्पन्न करते हैं, वे सर्वथा अभक्ष्य होते हैं। अच्छे भोजन की पहचान यही है कि उसे अग्नि में डालकर देखें, यदि उसमें सुगन्ध आये तो वह भक्ष्य और दुर्गन्ध आये तो वह सर्वथा अभक्ष्य है। आर्यों की यह भक्ष्याभक्ष्य भोजन के निर्णय की सर्वोत्तम प्राचीन पद्धति है। इसलिये जो भोजन आर्यों की पाकशाला में बनता था, उसकी पहले अग्नि में आहुतियां देकर परीक्षा की जाती थी। यही पंचमहायज्ञों में बलिवैश्वदेव यज्ञ का एक भाग है, जो प्रत्येक गृहस्थ को अनिवार्य रूप से करना पड़ता था। कोई भी दुर्गन्धयुक्त पदार्थ अग्नि पर पकाया जाये, वा पका हुवा अग्नि में डाला जाए तो उसकी दुर्गन्ध दूर तक फैलती और असह्य होती है। इसी प्रकार लालमिर्च, तम्बाकू आदि उत्तेजक पदार्थों को अग्नि पर डालने से पड़ोसियों तक को बड़ा कष्ट होता है, सबका जीना दूभर हो जाता है इससे यही सिद्ध होता है कि मांसादि दुर्गन्धयुक्त तथा मिर्च, तम्बाकू आदि तीक्ष्ण तथा नशीले पदार्थ अभक्ष्य हैं, सर्वथा हेय हैं। इनका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। मांस यदि रख दिया जाए, तो वह बहुत शीघ्र सड़ने लगता है उसमें असह्य दुर्गन्ध पैदा हो जाती है और यह दुर्गन्ध उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। जो मांस खाया जाता है, वह शरीर के अन्दर जाकर और अधिक सड़कर अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। इसी कारण मांसाहारियों के वस्त्र, मुख, शरीर, पसीना सभी में दुर्गन्ध आती है। जिन मोटरों, रेलगाड़ी के डब्बों में मांसाहारी यात्रा करते हैं, वहां निरामिषभोजी व्यक्ति को यात्रा करना वा ठहरना बहुत ही कठिन होता है। जिस स्थान वा मकान में मांसाहारी रहते हैं वहां भी दुर्गन्ध का कोई ठिकाना नहीं होता। मांस की दुकानों होटलों में इसीलिये बड़ी दुर्गन्ध आती है और जहां मछली बिकती हैं, वहां किसी भले मानस का ठहरना या जाना ही असम्भव सा हो जाता है। बहुत दूर से ही असह्य दुर्गन्ध आनी प्रारम्भ हो जाती

है। इससे यही प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि मांस में भयङ्कर दुर्गन्ध होती है अतः वह कभी भी तथा किसी को भी नहीं खाना चाहिए। क्योंकि दुर्गन्ध रोगों का घर है।

पशुवों का मांस जो खाया जाता है वह प्रायः रोगी, निर्बल, कम मूल्यवाले, तथा अनुपयोगी पशुवों का होता है। क्योंकि जब तक पशु नाना प्रकार के कार्यों में हितकर, सहायक, उपयोगी होते हैं तब तक उनका मूल्य अधिक होता है, वे मांस के लिये नहीं बेचे जाते, उनकी हत्या नहीं होती। जब ऐसे पशु दुर्बल, रोगी, और बूढे हो जाते हैं तथा कार्य के योग्य नहीं रहते, निकम्मे होजाते हैं, तब कसाइयों के पास बेचे जाते हैं। क्योंकि उनका उपयोग न होने से उनका मूल्य थोड़ा होता है और उधर मांस की बहुत बड़ी मांग को पूर्ण करने के लिये विवश होते हैं और इसी में उनको आर्थिक लाभ भी रहता है। मूल्यवान्, उपयोगी पशुओं की हत्या करने में आर्थिक लाभ की अपेक्षा हानि होती है, अतः रोगी पशु ही अधिक मारे जाते हैं। और ऐसे पशुओं को भला-बुरा, रद्दी पदार्थ खिलाकर कसाई लोग मांस बढाने के लिये मोटा करते हैं। उन्हें तो मांस की मांग की पूर्ति करनी होती है। इसलिये उपर्युक्त प्रकार के पशुवों के मांस में डाक्टरों के मतानुसार रोगों के कीटाणु होते हैं जो आंखों से प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देते और वे बढते जाते हैं और मांस को और अधिक गन्दा, गला, सड़ा हुआ बना देते हैं और पकाने से भी उसका प्रभाव दूर नहीं होता। जैसे बासी रोटी वा गले सड़े फलों एवं सब्जियों को हम चाहे कितना ही पकायें, उनको स्वास्थ्यप्रद नहीं बना सकते। सड़े हुये मांसादि में जो दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है, वह इसकी साक्षी देती है कि इसमें विष है, यह खाने योग्य नहीं है। विषाक्त भोजन रोगों का मूल है, वह स्वास्थ्यप्रद कैसे हो सकता है?

जिन पशुवों का मांस खाया जाता है, स्वयं उनमें भी क्षय, मृगी

हैजा आदि अनेक रोग होते हैं, जिनके कारण मांसाहारी मनुष्य भी उन रोगों में फस जाते हैं। अतः मांसाहार स्वास्थ्य का नाश करता तथा अनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

मांस का भोजन मनुष्य की जठराग्नि को निर्बल करके पाचनशक्ति बिगाड़ देता है। मुख में जो थूक वा लार होती है उसमें जो खारीपन (तेजाब) होता है, मांस का भोजन उस प्रभाव को बदल देता है। फिर मुख का रस जो भोजन के साथ मिलकर पाचन क्रिया में सहायक होता है उस में न्यूनता आजाती है और भोजन ठीक न पचने से मलबद्धता (कब्ज) हो जाती है। मल नहीं निकलता वा थोड़ा निकलता है, इसी कारण मांसाहारी प्रायः कब्ज के रोगी होते हैं।

उनकी जीभ पर बहुत मल जमा रहता है। उनके दांत बहुत शीघ्र ही खराब हो जाते हैं। ९९ प्रतिशत मांसाहारियों के दांत युवावस्था में ही बिगड़ जाते हैं। उनको प्रायः सभी को पायोरिया रोग हो जाता है। अमेरिका आदि देशों में प्रायः अधिकतर लोगों के दांत बनावटी देखने में आते हैं। उनको अपने प्राकृतिक दांत उपर्युक्त रोगों के कारण निकलवाने पड़ते हैं। मांसाहारियों के पेशाब में तेजाब अधिक होता है। उनकी नब्ज बहुत शीघ्र-शीघ्र चलती है। वे हृदय के रोगों से ग्रस्त रहते हैं। प्रायः मांसाहारी लोग हृदय की गति के रुकने से अकाल मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। मांसाहार में जो यूरिक एसिड का विष होता है वह बहुत अधिक मात्रा में शरीर के अन्दर जाता है, वही अधिकतर उपर्युक्त रोगों का कारण है।

मांसाहारी लोगों को मस्तिष्क सम्बन्धी रोग अधिक होते हैं। जैसे मृगी, पागलपन, अन्धापन, बहरापन इत्यादि। क्योंकि मांस तमोगुणी भोजन है। सात्त्विक आहार मस्तिष्क को बल देता है। मानसिकशक्तियों की दृष्टि से मांसाहारी स्वयं यह अनुभव करते हैं कि मांस का भोजन छोड़

देते हैं उनके मस्तिष्क बहुत शुद्ध होकर बुद्धि कुशाग्र हो जाती है।

मृगी के रोगी, पागल, अन्धे तथा बहरे लोग मांसाहारी लोगों में (जैसे मुसलमान) अधिक संख्या में देखने में आते हैं। गोदुग्ध गाय का मक्खनादि सात्विक आहार अधिक देने से मृगी, पागलपन के रोगी अच्छे हो जाते हैं।

न्यूयार्क में प्रिंसिपल टीचर एक अनाथालय में १३० बच्चों को वनस्पति आहार अर्थात् शाक फलादि पर ही रक्खा था। इससे बच्चों की मानसिक शक्तियों में इतना विशेष अन्तर आगया कि उनकी किसी विषय को झटपट समझ लेने, किसी बात की तह तक पहुँचने और मस्तिष्क की शक्ति दिन प्रतिदिन अधिक होती चली गई जिससे वह प्रिंसिपल स्वयं बहुत विस्मित हुवा। यह भी प्रसिद्ध है कि यूनान के बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान् (फिलास्फर) मांस नहीं खाते थे अतः वहां अरस्तू, लुकमान, सुक़रात और अफलातून जैसे अनेक जगत् प्रसिद्ध विद्वान् हुये हैं।

भारत के ऋषि महर्षि विद्वान् ब्राह्मण सभी उच्च कोटि के दार्शनिक विद्वान् हुये हैं जिनके चरणों में सारे संसार के लोग चरित्रादि की शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे। मनु जी महाराज लिखते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

भारतवर्ष विद्या का भण्डार था। हजारों वर्ष की दासता के कारण इसका बड़ा भारी पतन हुवा, किन्तु फिर भी गिरी हुई अवस्था में भी आध्यात्मिक दृष्टि से आज भी संसार का शिरोमणि है। इसका मुख्य कारण यहां का निरामिष सात्विक आहार है। सर आईजक न्यूटन ने सारी आयु (८३ वर्ष तक) मांस नहीं खाया। योरुप के लोगों को पृथिवी की आकर्षण शक्ति का ज्ञान उन्हीं ने कराया। वे उच्च कोटि के विद्वान् थे।

इस युग के आदर्श सुधारक, पूर्णयोगी पूर्ण विद्वान् पूर्ण ज्ञानी महर्षि दयानन्द जी महाराज हुये हैं। वे सर्वथा निरामिषभोजी थे। गोकरुणानिधि आदि ग्रन्थों में उन्होंने इस मांस भक्षण रूपी महापाप की बहुत निन्दा की है। वे सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अंग्रेजी राज्य में गोहत्या के विरुद्ध आवाज उठाई और उसे बन्द करने के लिये जनता के लाखों हस्ताक्षर करवाये किन्तु देश का दुर्भाग्य था उस समय भारत का यह कलंक धुल नहीं सका, जो आज तक भारतमाता के मुख को काला किये हुये है।

मांसाहार रुधिर को गन्दा करता है। अत: मांसाहारी के रुधिर के भीतर रोगों से संघर्ष (मुकाबला) करने की शक्ति क्षीण (नष्ट) हो जाती है अतः मांसाहारी पर रोग का बार-बार आक्रमण होता है। यह अनुभव सिद्ध है कि यदि किसी का कोई अंग कट जाये अथवा काटा जाये तो मांसाहारी की तुलना में शाकाहारी बहुत शीघ्र अच्छा होता है। यह सत्यता भारतीय सेना के हस्पतालों में खूब सिद्ध होचुकी है।

रोगों का घर मांसाहार

हमारे भारतीय ऋषियों ने भोजन के विषय में बहुत ही खोज तथा छान बीन की थी। इसीलिये घोर तमोगुणी भोजन सब रोगों का घर होता है। दुर्गन्धयुक्त सड़े हुए मांस से रोग ही उत्पन्न होंगे। मनुष्य का भोजन न होने से यह देर से पचता है। जठराग्नि पर व्यर्थ का भार डालता है, किस पदार्थ के पचने में कितना समय लगता है, इसकी निम्नतालिका अनुभवी डाक्टरों ने दी है :—

मांस	पचने का समय
बकरे का मांस	३ घण्टे में
शोरबा	३॥ ,, ,,
मुर्गी का मांस	४ ,, ,,

मछली	४॥ ,, ,,
सुअर का मांस	५। ,, ,,
गोमांस	५॥ ,, ,,

अन्न, फल, दूध आदि के पचने का समय इस प्रकार है :—

रोटी	३॥ घण्टे
आलू भुना हुवा	२। ,,
घी पका हुआ	६ ,,
दूध धारोष्ण या गर्म	२ ,,
सेव पका हुवा	१॥ ,,
चावल उबला हुवा	१ ,,

इसलिये जौ, चावल, दूध के सात्विक भोजन को हमारे पूर्व पुरुष अधिक महत्त्वपूर्ण समझकर खाते थे। वैसे सभी अन्न जो अपनी प्रकृति के अनुकूल हों, मनुष्य को खाने चाहियें। यथार्थ में अन्न, फल, शाक, सब्जी, दूध घी आदि पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन है। इन्हें बिना पकाये भी खाया पीया जा सकता है। विज्ञान यह बतलाता है कि पकाने तथा ऊपर के नमक मिर्च आदि डालने से पदार्थ की शक्ति न्यून हो जाती है, जो पदार्थ जिस रूप में प्रकृति से मिलता है, वह उसी रूप में खाया जाने से अधिक शक्ति प्रदान करता है तथा शीघ्र पचता है, किन्तु मांस बिना पकाये नहीं खाया जा सकता। इसीलिये सिंह, भेड़िया, कुत्ते और बिल्ली आदि को ही मांसभक्षी कहा जा सकता है। जो अपने दांत अपने शिकार को मारकर ताजा मांस खाते हैं। मनुष्य मांसाहारी नहीं, न इसे कोई मांसाहारी कहता है क्योंकि हम देखते हैं बिल्ली का बच्चा बिना सिखाये चूहे के ऊपर टूट पड़ता है। इसीप्रकार सिंह का शावक (बच्चा) भी अपने शिकार पर चढ़ाई करता है, किन्तु मानव का बच्चा फल उठाकर

भले ही मुख में देने का यत्न करता है किन्तु वह मांसाहारी जीवों के समान मांस के टुकड़े, रक्त, मच्छी, चूहा, कीट, पतङ्ग किसी पदार्थ को उठाकर खाने की चेष्टा नहीं करता।

यह सब सिद्ध करता है कि मांस मनुष्य का भोजन नहीं। मूक और असहाय जीव जन्तुओं पर निर्दय होना मनुष्य के लिये सर्वाधिक कलङ्क की बात है। सभ्य और शिक्षित मनुष्य में तो क्रूरता नहीं होनी चाहिए, उसके स्थान पर सौम्यता, सुशीलता एवं दयाभाव होना चाहिए।

मुसलमानों की एक धार्मिक पुस्तक अबुलफजल के तीसरे दफतर में लिखा है कि अज्ञानी पुरुष अपने मन की मूढता में ग्रसित हुआ अपने छुटकारे का मार्ग नहीं ढूंढता। ईश्वर सबके सृजनहार ने मनुष्य के लिये अनेक पदार्थ उत्पन्न कर दिये हैं। उनपर सन्तुष्ट न रहकर उसने अपने अन्तःकरण (पेट) को पशुओं का कब्रिस्तान बनाया है और अपना पेट भरने के लिये कितने ही जीवों को परलोक पहुँचाया है। यदि ईश्वर मेरा शरीर इतना बड़ा बनाता कि ये मांसभक्षण की हानि न समझनेवाले सब लोग मेरे ही मांस को खाकर तृप्त हो सकते और किसी अन्य जीव को न मारते तो मैं तेरा बड़ा कृतार्थ होता।

इलमतिबइलाज की पुस्तक मखजन-उल अदविया में मांस के विषय में इस प्रकार व्यवस्था दी है—

"रात्री में मांस खाने से तुखमा जो हैजे से कुछ न्यून होता है, हो जाता है और खिलतें जो वात, पित्त और कफ कहलाते हैं उनमें दोष आता है। मन काला अर्थात् मलिन हो जाता है। आंखों में धुंधलापन उत्पन्न हो जाता है। जहन कुन्द (बुद्धिमान्द्य) हो जाता है।"

क्योंकि कच्चे मांस पर भिनभिनाती हुई मक्खियां और सड़न की दुर्गन्ध देखकर किसका मुख उसका स्वाद लेना चाहेगा। जो वस्तु नेत्रों को भी अप्रिय है=अच्छी नहीं लगती, उसे जिह्वा कब स्वीकार कर सकती है।

डाक्टर मिचलेट साहब अपनी एक भोजन की पुस्तक में लिखते हैं—

"जीवन-मृत्यु और नित्य की हत्यायें जो केवल क्षणिक जीभ के स्वाद के लिये हम नित्य करते हैं तथा अन्य तामसिक और कठोर समस्यायें हमारे सन्मुख उपस्थित हैं। हाय यह कैसी और हृदयविदारक उल्टी चाल है। क्या हमें किसी ऐसे लोक की आशा करनी चाहिये, जहां पर ये क्षुद्र और भयङ्कर अत्याचार न हों।"

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् चिटडेन *Pb. D., D.Sc., L. L. D* ने एक प्रयोग किया। उन्होंने छः मस्तिष्क से कार्य करनेवाले बुद्धिजीवी प्रोफेसर और डाक्टर तथा २० शारीरिक श्रम करनेवालों को जो सेना से छांटे गये थे और एक यूनिवर्सिटी से आठ पहलवानों को लिया, उन सब पर भोजन सम्बन्धी प्रयोग किया गया। यह प्रयोग अक्तूबर १९०३ से प्रारम्भ हुवा और जून १९०४ तक चलता रहा, इसमें उन्हें थोड़ा प्राण पोषक तत्त्व दिया जाता था, जिससे उनमें आरोग्यता और शक्ति बनी रहे। इस प्रयोग से पूर्व डाक्टरों का मत था कि प्रत्येक मनुष्य के लिये केवल १२० ग्राम (२ छटांक) प्राणपोषक तत्त्व (प्रोटीन) की आवश्यकता है। जो लोग यही चिल्लाया करते हैं कि मनुष्य के लिये केवल प्रोटीन प्राण-पोषक तत्त्व की आवश्यकता है, वह जितना अधिक मिले, उतना अच्छा है, वे भूल करते हैं। प्रो० चिटण्डेन ने यह सिद्ध कर दिया की २० सिपाहियों के लिये ५० ग्राम प्राणपोषकतत्त्व (प्रोटीन) पर्याप्त था और आठ पहलवानों के लिये ५५ ग्राम बहुत होता था। प्रोफेसर महोदय ने स्वयं

१६ ग्राम अपने लिये प्रयोग किया, फिर भी उनकी शक्ति बढ़ती गई। प्रयोग में जो सिपाही लिये गये थे, उनकी खुराक पहले ७५ औंस (२। सेर) थी, जिसमें उन्हें २२ औंस कसाई के यहां से मांस मिलता था। प्रयोग में मांस बिल्कुल बन्द करके इनकी खुराक केवल ५१ औंस कर दी गई। ६ मास वे उस भोजन पर रहे। यद्यपि वे लोग पहले भी आरोग्य स्वस्थ थे, तथापि नो मास तक बिना मांस का भोजन किये वे बहुत अधिक बलवान् शक्तिशाली और अच्छी अवस्था में पाये गये। इस प्रयोग में डाइनमोमीटर से ज्ञात हुवा कि उनकी शक्ति पहले से डेढ गुणी हो गई थी और उन्हें कार्य में विशेष उत्साह रहता था। इस प्रयोग के पश्चात् कहने पर भी उन्होंने मांस नहीं खाया। सदैव के लिये मांस खाना छोड़ दिया।

स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी से उनकी ८६ वीं वर्ष गांठ के दिन एक पत्र प्रतिनिधि ने पूछा कि आप की आरोग्यता का कारण क्या है? तो उन्होंने उत्तर दिया—

"मैं न मांस खाता हूं, न शराब पीता हूँ, न मसाले खाता हूँ। मैं सदा शुद्ध वायु सेवन करता हूँ। यही मेरे स्वस्थ रहने के कारण हैं।"

अमरीका के डाक्टर जानहार्न का मत है कि मांस बड़ी देर से पचता है। इसके पचने के समय कलेजे की धड़कन दो सौ के लगभग बढ जाती है, जिससे हृदय रोग हो जाता है और मेदा कमजोर हो जाता है। इसी कारण मांसाहारी लोग हृदय के रोगों के कारण ही अधिक संख्या में मरते हैं। हृदय के कमजोर होने से मांसाहारी भीरू या कायर हो जाते हैं।

'इण्डियन मेडिकल जनरल' नामक पत्र में लिखा है कि मांस भक्षकों के मूत्र में तिगुणी 'यूरिक एसिड अधिक बढ जाती है। इसी प्रकार यूरिया भी दूनी मात्रा में आने लगती है। ये दोनों पदार्थ विष हैं। इनके गुर्दों को

अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे गठिया, वातरोग, अस्थि रोग और जलोदर रोग उत्पन्न होते हैं।

डाक्टर अलेक्जेण्डर मार्सडन M.D.F.R.C.S. चेयर मैन आफ कैंसर हस्पताल लंदन लिखते हैं— इंलैण्ड में कैंसर के रोगी दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहें हैं, प्रति वर्ष ३०,००० (तीस सहस्र) मनुष्य कैंसर के रोग से मरते हैं। मांसाहार जितनी तेजी से बढ़ रहा है, उससे भय है कि भविष्य की सन्तानों में से ढाई करोड़ लोग इसकी भेंट होंगे। जिन देशों में मांस अधिक खाया जाता है, वहां के लोग रोगी अधिक होते हैं, उनकी कमाई का अधिकतर धन डाक्टरों के पास जाता है और डाक्टरों की फौज इसी कारण बढती जारही है।

निम्नलिखित तालिका से इस पर प्रकाश पड़ता है:—

देश	एक मनुष्य पर एक वर्ष में एक मांस का व्यय	दस लाख मनुष्यों में डाक्टरो की संख्या
जर्मनी	६४ औंस	३५५
फ्रांस	७७ औंस	३८०
इंगलैंड या वेल्स	११८ औंस	५७८
आस्ट्रेलिया	२७६ औंस	७८०

यह बहुत पहले की सूची है। अब तो डाक्टर इससे भी दुगुणे हो गये होंगे। हम भारत में देखते हैं कि शहरों और कस्बों में बाजार के बाजार डाक्टर वैद्य और हकीमों से भरे पड़े हैं।

डाक्टरों ने खोज करके बताया है, निमोनियां, लकवा, रिंडेरपेन्ट, शीतला, चेचक, कंठमाला, क्षय (तपेदिक) और अदीठ आदि विषैला फोड़ा इत्यादि भयङ्कर और प्राणनाशक रोग प्राय: गाय, बकरी और जलजन्तुवों का मांस खाने से होते हैं। सूवर के मांस में एक प्रकार के छोटे कीड़े कद्दू-दाने होते हैं, उनके पेट में जाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बकरी के

मांस में ट्रिकनास्पिरटस कीड़ा रहता है, जिससे भयङ्कर रोग ट्रिकनोसेस हो जाता है। पठनी मछली के खाने से कुष्ठ रोग होता है। अतः समुद्र के तट पर रहनेवाले अथवा मछली का मांस अधिक मात्रा में खानेवाले लोग अधिकतर कुष्ठ रोग से पीड़ित देखे जाते हैं। मांस को देखकर यह कोई नहीं जानता कि यह रोगी पशु का मांस है या स्वस्थ का। कसाई नूतन लोग पैसा कमाने के लिये रोगी पशुओं को काटते हैं। क्योंकि उनका मांस ही सस्ता पड़ता है। रोगी पशुओं का मांस खाकर कोई स्वस्थ कैसे होगा, जबकि स्वस्थ पशुओं का मांस भी भयङ्कर रोग उत्पन्न करता है।

इस विषय में कुछ अन्य डाक्टरों का अनुभव लिखता हूं:—

"मेरा पच्चीस वर्ष से मछली और पक्षियों के मांस-त्याग का अनुभव है। मेरे पिता की आयु इससे २० वर्ष बढ़ गई थी। मांस से फल बहुत ही अधिक लाभ करते हैं।"

—डाक्टर वाल्टर हाडविन M.D.

'एक रोगी की गर्दन पर चार वर्ष से कैंसर थी। मुझे खोज करने पर उसके मांसाहारी होने का पता चला। उससे मांस छुड़ा दिया गया, अब वह स्वस्थ है।'

डा० J. H. K. लॉग

"मांसाहार शक्ति प्रदान करने के बदले निर्बलता का शिकार बनाता और उससे वाइट्रोजिन्स पदार्थ उत्पन्न होता है। वह स्नायु पर विष का कार्य करता है।"

—डा० हर टी कोडर स्पन

"मांसाहार की बढती के साथ-साथ नासूर के दर्द की असाधारण वृद्धि होती है"

—डा० विलियम रावर्ट

"नासूर के दर्द का होना मांस का परिणाम है।"

डा० सर जेम्सवोयर M.D.F.R. C.P

८५%गले की आंतों के दर्द का कारण मांसाहार है।"

—डा० ली ल्योनार्ड विलियम्स

डेढ सौ वर्ष पहले से दांत के दर्द और पायोरिया के रोगी अधिक बढ़ गये हैं। इसका कारण मांसाहार है।"

—डा० मिस्टर आर्थर सन्डरबुर

"१०५००० विद्यार्थियों में से ८६२५ विद्यार्थी दांत के रोगों के रोगी पाये गये, ये सब मांस के कारण हैं।"

—डा० मिस्टर थोमस जे० रोगन

इस युग के महापुरुष महर्षि दयानन्द जी शाकाहारी होकर ही महाशक्तिशाली बने थे। उन्होंने मांस भक्षण करने का कभी जीवन भर विचार भी नहीं किया। उनकी बल शक्ति सम्बन्धी अनेक घटनायें प्रसिद्ध हैं। जैसे जालन्धर में एक बार उन्होंने दो घोड़ों की बग्गी को एक हाथ से रोक दिया था, घोड़ों के पूरा बल लगाने पर भी बग्घी टस से मस नहीं हुई थी। एक बार एक रहट को हाथ से खेंचकर एक बड़े हौज को भर दिया था, उससे भी उनका व्यायाम पूरा नहीं हुवा। उसकी पूर्ति के लिये उनको आगे जाकर दौड़ लगानी पड़ी। महर्षि कई-कई कोस की दौड़ प्रतिदिन करते थे।

एक बार उन्होंने अनेक कश्मीरी पहलवानों की उपस्थिति में अपने

व्याख्यान में घोषणा की थी कि मेरी पचास वर्ष से अधिक आयु है, आप में ऐसा कौन शक्तिशाली पुरुष है जो मेरे इस खड़े हुए हाथ को झुका दे। इस पर किसी भी पहलवान में उठने का साहस नहीं हुआ।

एक बार कुछ पहलवानों ने महर्षि जी का शक्तिपरीक्षण करना चाहा। महर्षि उनके विचार को भांप गये। उस समय ऋषिवर स्नान करके आरहे थे, उनके पास गीली कौपीन थी, उन्होंने कहा कि इसमें से एक बूंद जल निकाल दीजिये, किन्तु कोई भी पहलवान एक बूंद भी जल नहीं निकाल सका। तदनन्तर महर्षि ने स्वयं उस कौपीन को एक हाथ से निचोड़ कर उस में से जल निकाल कर दिखा दिया।

इस प्रकार उनकी शक्ति के अनेक उदाहरण हैं, जिन से सिद्ध है कि घी, दूध आदि सात्विक पदार्थों से ही बल बढ़ता है। महर्षि जी का भोजन सर्वथा विशुद्ध और सात्विक था। उन्होंने कभी मांस भक्षण का समर्थन नहीं किया, किन्तु सदा घोर विरोध ही करते रहे। उनके ग्रन्थों में मांस निषेध की अनेक स्थलों पर चर्चा है।

जब ऋषिवर ने भारत भूमि पर जन्म लिया, उस समय इस देश की अवस्था बहुत शोचनीय थी। उसका वर्णन एक कवि ने इस प्रकार किया है—

छाया घनघोर अन्धकार मिथ्या पन्थन को,
शुद्ध बुद्ध ईश्वरीय ज्ञान बिसराया था॥
वैदिक सभ्यता को अस्त व्यस्त करने के काज,
पश्चिमी कुसभ्यता ने रंग बिठलाया था॥
थी विधवा अनाथ त्राहि त्राहि करते थे,
धर्म और कर्म चौके चूल्हे में समाया था॥

रक्षक नहीं कोई भक्षक बने थे सभी,
ऐसे घोर संकट में दयानन्द आया था ॥

उपर्युक्त भयङ्कर समय में महर्षि दयानन्द ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। उल्टी गङ्गा बहाकर दिखाई। यह अदम्य साहस वीरता, बल, शक्ति ऋषिवर दयानन्द में कहां से आई। वे ब्रह्मचारी थे। "वीर्यं वै बलम्" वीर्यवान् थे। इसीलिये सुदृढ़, सुन्दर, सुगठित, सुडौल, स्वस्थ शरीर के स्वामी थे। उनकी ऊंचाई छः फीट नौ इञ्च थी। चलते समय भूमि भी कम्पायमान होती थी। सारे शरीर में कान्ति, तेज और विचित्र छवि थी। वे शुद्ध, सात्त्विक आहार और घोर तपस्या के कारण अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। मांसाहारी कभी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। मांस खानेवाले के लिये ब्रह्मचर्यपालन वा वीर्यरक्षा करना असम्भव है। शुद्ध भोजन के बिना शुद्ध विचार नहीं हो सकते। शुद्ध विचार ही ब्रह्मचर्य का मुख्य साधन है। मांसाहारी देशों में ब्रह्मचारी के दर्शन दुर्लभ ही नहीं, असम्भव हैं। व्यभिचार अनाचार के घर कहीं देखने हों तो मांसाहारी देश हैं। कुमार कुमारियों की अनुचित सन्तानों की बड़ी भरमार है। मांसाहारी देश सभी पापों की खान हैं। यह वहां होनेवाले पापों के आंकड़े सिद्ध करते हैं। अप्राकृतिक मैथुन मांसाहारी जातियों तथा व्यक्तियों में ही विशेष रूप से पाया जाता है।

आदि सृष्टि से भारत देश शुद्ध शाकाहारी सात्त्विक भोजन प्रधान रहा है। इसीलिये यह ऋषियों देवताओं और ब्रह्मचारियों का देश माना जाता है। इस देश में—

"अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसां बभूवुः"

(महाभारत ४.१।७६)

इस देश में ८८ (अट्ठासी) हजार ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि

हुये हैं। ब्रह्मचारियों की परम्परा महाभारत युद्ध के कारण टूट गई थी। उसके पांच हजार वर्ष पश्चात् आदर्श अखण्ड ब्रह्मचारी महर्षि, देव दयानन्द ने उस टूटी हुई परम्परा को पुनः जोड़ दिया और उन्हीं की प्रेरणा से ब्रह्मचर्य के क्रियात्मक प्रचारार्थ अनेक गुरुकुलों की स्थापना हुई। ब्रह्मचर्यपूर्वक आर्षशिक्षा की गुरुकुलप्रणाली का पुनः प्रचलन ब्रह्मचारी दयानन्द की कृपा से पुनः सारे भारतवर्ष में हो गया। जहां पर ब्रचाहारी लोग सर्वथा और सर्वदा शुद्ध, सात्त्विक और निरामिष आहार करते हैं और यत्र तत्र सर्वत्र पुनः ब्रह्मचारियों के दर्शन होने लगे हैं।

शुद्ध शाकाहारी ब्रह्मचारियों ने आजतक क्या क्या किया, उसपर चन्द्र कवि के इस भजन ने अच्छा प्रकाश डाला है, जिसे आर्योपदेशक स्वामी नित्यानन्द जी आदि सभी सदा झूम-झूमकर गाते हैं।

भजन

ब्रह्मचर्य नष्ट कर डाला, हो गया देश मतवाला ॥
ब्रह्मचारी हनुमान् वीर ने, कितना बल दिखलाया था,
ब्रह्मचर्य के प्रताप से लङ्का को जाय जलाया था,
रावण के दल से अंगद का पैर टला नहीं टाला ॥१॥
शक्ति खाय उठे लक्ष्मण जी कैसा युद्ध मचाया था,
मेघनाद से शूरवीर को क्षण में मार गिराया था,
रामायण को पढ़कर देखो है इतिहास निराला ॥२॥
परशुराम के भी कुठार का जग मशहूर फिसाना था,
बाल ब्रह्मचारी भीष्म को जाने सभी जमाना था,
जग कांपे था उसके भयसे कभी पड़ न जाये कहीं पाला ॥३॥

डेढ अरब के मुकाबले में इकला वीर दहाड़ा था,
जो कोई उनके सन्मुख आया पल में उसे पछाड़ा था,
जिसका शोर मचा दुनियां में ऋषि दयानन्द आला ॥४॥
चालीस मन के पत्थर को धर छाती पर तुड़वाता था,
लोहे की जंजीरों के वह टुकड़े तोड़ वगाता था,
राममूर्ति दो मोटर रोके है प्रत्यक्ष हवाला ॥५॥
ब्रह्मचर्य को धारो लोगो यह एक चीज अनूठी है,
मुरदे से जिन्दा करने की यह संजीवनी बूटी है,
'चन्द्र' कहे इस कमजोरी को दे दो देश निकाला ॥६॥

इस भजन में भारतवर्ष के निरामिषभोजी ब्रह्मचारियों के उपक्रमों का वर्णन किया है।

इसी प्रकार अन्य देशों के निवासी जो मांस नहीं खावे, वे मांसाहारियों से बलवान् और वीर होते हैं।

लाल समुद्र तथा नहर स्वेज के तट पर रहने वाले भी मांस नहीं छूते, वे बड़े परिश्रमी और बली होते हैं। काबुल के पठान मेवा अधिक खाते हैं। इसी से वे पुष्ट और बलवान् होते हैं। इन उपर्युक्त बातों से सिद्ध होता है कि मांसाहारी लोगों की अपेक्षा शाकाहारी निरामिषभोजी अधिक परिश्रमी, धनपक और बलवान् होते हैं।

मांसाहारी क्रोधी और भयानक अत्याचारी हो जाते हैं। पैशाचिक घोर निर्दयता की भावना उनमें घर कर जाती है तथा स्थिर हो जाती है। पर ये बलवान् नहीं होते। उनकी आत्मा कमजोर हो जाती है। शेर बरबे (जंगली) भैंसे से मुकाबला नहीं कर सकता। अनेक शेरों के बीच में जंगली

भैंसा बल घी आता है, वह उनसे नहीं डरता, किन्तु शेर जंगली भैंसे से डर कर दूर रहने का यत्न करते हैं। जितना भार (बोझ) एक बैल या घोड़ा खींच ले जाता है उतना भार दस शेर मिलकर भी नहीं खींच सकते। मथुरा के चौबों के मुकाबले पर कोई मांसाहारी नहीं आ सकता।

भारत के प्रसिद्ध बली प्रो० राममूर्ति ने योरुप के पहलवानों को दास केवल घी-दूध के बल पर विजय कर दिखाया था।

भारत के पहलवान जो मांस खाते हैं, वे भी घी, दूध, बादामों का अधिक सेवन करते हैं. उनमें बल घी, दूध के कारण होता है। सारी दुनियां को जितनेवाला पहलवान गामा भी इसी प्रकार का था, वह . . . कहलाया, किन्तु भारतीय पहलवान भगवानदास जो नराणा (दिल्ली राज्य) का रहनेवाला था, के साथ गामा पहलवान की कुश्ती . . . ये दोनों बराबर रहे। विश्वविजयी गामा भगवानदास को नहीं जीत सका . . .

मैंने भगवानदास पहलवान के अनेक बार दर्शन किये। वह सर्व . . . निरामिषभोजी एवं शाकाहारी था। वह बहुत सुन्दर स्वस्थ, सुदृढ सुडौ . . . शरीर वाला छः फुटा वलिष्ठ पहलवान था। उसने पत्थर की चूना पीस . . . वाली चक्की में बैलों के स्थान पर स्वयं जुड़कर चूना पीसकर पक्की हवेली (मकान) बनाई थी, उसकी यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। वह सारी आयु ब्रह्मचारी रहा तथा बहुत ही सदाचारी एवं सरल प्रकृति का पहलवान था। उसकी जोड़ के पहलवान भारत में दो-चार ही थे।

भगवानदास पहलवान महाराजा कोल्हापुर के पहलवान थे जैसे कि गामा महाराज पटियाले के पहलवान थे। एक बार भगवानदास पहलवान हैदराबाद के पहलवान के साथ, जोकि मीर उस्मान अली नवाब का अपना निजी पहलवान था, कुश्ती लड़ने हैदराबाद गये। नवाब का पहलवान

अली नाम से प्रसिद्ध था, जो गामा की जोड़ का ही था। नवाब की आज्ञा से कुश्ती की तिथि नियत हो गई और दो मास की तैयारी का समय दिया गया। पहलवान भगवानदास हिन्दूगोसाईं के बाग़ में रहता था, वहीं पर गोसाईं ने घी दूध का प्रबन्ध कर दिया था, किन्तु जोर करने के लिये कोई जोड़ का पहलवान इन्हें वहां नहीं मिला, विवशता थी। इन्होंने गोसाईं जी से कहकर लोहे का काम के समान एक बड़ा फावड़ा (कस्सी) तैयार करवाया। व्यायाम के पश्चात् बाग में उस कस्सी से तीन-चार बीघे भूमि खोद डालना यही प्रतिदिन का पहलवान भगवानदास का जोर था। दो मास बीत गये। दोनों पहलवान मैदान में आये। नवाब की देखरेख में कुश्ती प्रारम्भ हुई। पहले भारत में तोड़ की अर्थात् पूर्ण हार जीत की कुश्ती होती थी, जबतक चित्त करके सारी पीठ और कमर भूमि पर न लगादे और छाती आकाश को न दिखादे, तब तक जीत नहीं मानी जाती थी। न ही कुश्ती बीच में छूटती थी। दो अढ़ाई घण्टे पहलवानों की जंगली भैंसों के समान कुश्ती हुई। बड़े पहलवान थे, बराबर की जोड़ी थी, हार जीत सहज में नहीं होती थी। अन्त में अली पहलवान जो प्रतिदिन दो बकरों का शोरवा खा जाता था, थकने लगा और अन्त में थककर बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा। पहलवान भगवानदास की जय हुई, यह सर्वथा शाकाहारी निरामिषभोजी था। मांसाहारियों पर यह शाकाहारियों का विजय था।

एक परीक्षण इस विषय में अंग्रेजों ने अपने राज्यकाल में बबीना छावनी में फौजी पहलवानों पर किया था। उन्होंने ६० पहलवान शाकाहारी निरामिषभोजी और ६० मांसाहारी छांटे। तोल के अनुसार इनकी जोड़ मिलाई और एक दो मास की तैयारी का समय दे दिया। जब कुश्ती की निश्चित तिथि आगई तो पहलवानों का दंगल हुवा। उन साठ जोड़ों में ५९ कुश्तियां शाकाहारी निरामिषभोजी पहलवान जीत गये तथा ६०वीं

कुश्ती में वह जोड़ बराबर रही। ये जीतनेवाले सभी पहलवान प्रायः हरयाणे के थे। इसने प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध कर दिया कि निरामिषभोजी घी, दूध अन्न,फल खानेवाले ही बलवान् वीर और बहादुर होते हैं।

अब वर्त्तमान समय की बात लीजिये। जो सबके सम्मुख है, वह है भारत केसरी हरयाणे के प्रसिद्ध होनहार पहलवान मा० चन्दगीराम के विषय में, उसका विवरण संक्षेप में पढ़ें।

भारत में हरयाणा प्रान्त अन्य प्रान्तों की अपेक्षा कुछ विशिष्टतायें रखता है। यहाँ के वीर निवासी इतिहास प्रसिद्ध वीर योधेयों की सन्तान हैं। योधेयों के पूर्वजों में मनु, पुरूरवा, ययाति, उशीनर और नृग आदि बड़े-बड़े राजा हुये हैं। इसी वंश में योधेयों के चचा शिवि औशीनर के सुवीर केकय और मद्रक इन तीन पुत्रों से तीन गणराज्यों की स्थापना हुई। इसी प्रकार इनके चचेरे भाई सुव्रत के पुत्र अम्बष्ठ ने एक गणराज्य की स्थापना की। यदुवंश भी जिसमें योगीराज श्रीकृष्ण एवं बलवान् बलराम हुये हैं, एक गण है तथा कौरव पाण्डव भी पुरुवंशी हैं और योधेय अनुवंशी हैं। पुरु, अनु और यदु तीनों सगे भाई चक्रवर्ती राजा ययाति की सन्तान हैं। वैसे तो सभी भारतवासी ऋषियों की सन्तान हैं। ऋषि, महर्षि सभी निरामिष, शुद्ध, सात्त्विक आहार विहार करनेवाले थे। योधेय उन्हीं ऋषियों की सन्तान हैं। वैवस्वत मनु के वंश में उत्पन्न होने से योधेयों का ऊंचा स्थान है। सप्तद्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट् महामना योधेयों का प्रपितामह (परदादा) था।

योधेयों का भोजन सदा से गोदुग्ध, दही घृत, फल अन्नादि सात्त्विक तथा पवित्र रहा है। वे अपने वंश चलानेवाले मनु जी महाराज की सब वेद विहित आज्ञाओं को मानते थे। वेदानुसार बनाये गये वैदिक विधान ग्रन्थ मनुस्मृति में लिखे अनुसार चलने में वे अपना तथा सारे विश्व का कल्याण समझते थे। वे मनुस्मृति के इस श्लोक को कैसे भूल सकते थे—

स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥
(मनु० ५।५२)

जो व्यक्ति केवल दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उस जैसा कोई पापी है ही नहीं।

इन्हीं विशिष्टताओं के कारण यौधेय वंश सहस्रों वर्षों तक भारतीय इतिहास में सूर्यवत् प्रकाशमान रहा है। इस विषय में मेरी लिखी पुस्तक "हरयाणे के वीर यौधेय" में विस्तार से लिखा है। शतियां बीत गईं, अनेक राज्य इस आर्यभूमि की रंगस्थली पर अपना खेल खेलकर चले गये, किन्तु यौधेयों की सन्तान हरयाणा निवासियों में आज भी कुछ विशिष्टतायें शेष हैं। आहार विहार में सरलता, सात्त्विकता इनमें कूट-कूट कर भरी है। अर्थात् अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इनका आचार, विचार, आहार, व्यवहार शुद्ध सात्त्विक है। ये आदि सृष्टि से आजतक परम्परा से सर्वथा शाकाहारी निरामिषभोजी हैं। मांस को खाना तो दूर रहा, कभी इन्होंने छुवा भी नहीं।

"देशों में देश हरयाणा। जहाँ दूध दही का खाणा।"

इनकी यह लोकोक्ति जगत्प्रसिद्ध है। जैन कवि सोमदेव सूरि ने भी अपनी पुस्तक "यशस्तिलकम्" चम्पू में यौधेयों की खूब प्रशंसा की है।

स यौधेय इति ख्यातो देशः क्षेत्रोऽस्ति भारते।
देवश्रीस्पर्धया स्वर्गः स्रष्ट्रा सृष्ट इवापरः ॥४२॥

भारतदेश में प्रसिद्ध वह यौधेय देश अत्यधिक मनोहर होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो ब्रह्मा ने अथवा परमात्मा स्रष्टा ने दिव्य श्री से ईर्ष्या करके दूसरे स्वर्ग की रचना कर डाली है।

महर्षि व्यास ने भी विवश होकर यौधेयों की राजधानी रोहतक के विषय में इसी प्रकार लिखा है—

ततो वहुधनं रम्यं गवाढ्य धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ॥

नकुल ने बहुत धन धान्य से सम्पन्न, गौवों की बहुलता से युक्त तथा कार्तिकेय के अत्यन्त प्रिय रमणीय नगर रोहितक पर आक्रमण किया। हरयाणे के शूरवीर मस्त क्षत्रिय यौधेयों से उसका घोर संग्राम हुवा। 'यौधेयानां जयमन्त्रधराणाम्" जिन यौधेयों को सभी जयमन्त्रधर कहते थे, जो कभी किसी से पराजित नहीं होते थे, उन विजयी यौधेयों की प्रशंसा इनके शत्रुओं ने भी की है। इन्हीं से भयभीत होकर सिकन्दर की सेना ने व्यास नदी को पार नहीं किया। अपने पूर्वज यौधेयों के गुण आज इनकी सन्तान हरयाणावासियों में बहुत अधिक विद्यमान हैं। जैसे अल्हड़-पन से युक्त वीरता और भोलेपन से मिश्रित उद्दण्डता आज भी इनके भीतर विद्यमान है। इन्हें प्रेम से वश में करना जितना सरल है, आंखें दिखाकर दबाना उतना ही कठिन है। अपने पूर्वज यौधेयों के समान युद्ध करना (लड़ना) इनका मुख्य कार्य है। यदि लड़ने को शत्रु न मिले तो परस्पर भी लडाई कर बैठते हैं, लड़ाई के अभ्यास को कभी नहीं छोड़ते।

पाकिस्तान और चीन के युद्ध में इनकी वीरता की गाथा जगत्प्रसिद्ध है। जिसकी चर्चा मैं पहले कर चुका हूं। इन्हीं यौधेयों की सन्तान आर्य पहलवान श्री मास्टर चन्दगीराम जी भारत के सभी पहलवानों को हराकर दो बार "भारत केसरी' और दो बार 'हिन्द केसरी" उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार हरयाणे के रामधन आर्य पहलवान हरयाणे के पहलवानों को "हराकर हरयाणा केसरी" उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। ये दोनों पहलवान न मांस, अण्डे, मच्छी आदि अभक्ष्य पदार्थों को छूते और

न ही तम्बाकू शराब आदि का ही सेवन करते हैं। आचार व्यवहार में शुद्ध सात्विक हैं। सर्वथा और जन्म से ही शुद्ध निरामिषभोजी (शाकाहारी) हैं।

मा० चन्दगीराम जी सब पहलवानों को हराकर दो वार (सन् १९६२ और १९६८ ई०) हिन्दकेसरी विजेता बने और दो वार (सन् १९६८ और १९६९ ई०) ही भारतकेसरी विजेता बने। इन्होंने बड़े बड़े भारी भरकम प्रसिद्ध मांसाहारी पहलवानों को पछाड़कर दर्शकों को आश्चर्य में डाल दिया। जैसे मेहरदीन पहलवान मांसाहारी है। दोनों वार भारतकेसरी की अन्तिम कुश्ती इसी के साथ मा० चन्दगीराम की हुई है और दोनों वार मा० चन्दगीराम शाकाहारी पहलवान जीता तथा मांसाहारी मेहरदीन हार गया। एक प्रकार से यह शाकाहारियों की मांसाहारियों से जीत थी। प्रथम बार जिस समय मेहरदीन के मुकावले पर मा० चन्दगीराम जी अखाड़े में कुश्ती के लिये निकले तो उसके आगे बालक से लगते थे। किसी को भी यह आशा नहीं थी कि वे जीत जायेंगे।

क्योंकि चन्दगीराम की अपेक्षा मेहरदीन में १६० पौंड भार अधिक है। ३५ मिनट तक घोर संघर्ष हुवा। इसमें मेहरदीन इतना थक गया कि अखाड़े में वेहोश होकर गिर पड़ा, स्वयं उठ भी नहीं सका, आर्य पहलवान रूपचन्द आदि ने उसे सहारा देकर उठाया। यदि मेहरदीन में मांस खाने का दोष नहीं होता तो चन्दगीराम उसे कभी भी नहीं हरा सकता था। मांसाहारी सभी पहलवानों में यह दोष होता है कि वे पहले ५ वा १० मिनट खूब उछल कूद करते हैं, फिर १० मिनट के पीछे हांफने लगते हैं। उनका दम फूल जाता है। और श्वांस चढ़ जाते हैं। फिर उनको हराना वामहस्त का कार्य है। गोश्तखोर में दम नहीं होता, वह शाकाहारी पहलवान के आगे अधिक देर टिक नहीं सकता। इसी कारण सभी मांसाहारी पहलवान थककर पिट जाते हैं, मार खाते हैं। इसी मांसाहार का फल मेहरदीन को

भोगना पड़ा। यह १९६८ में हुई कुश्ती की कहानी है। इस बार १९६९ ई० में दिल्ली में पुनः भारत केसरी दंगल हुवा और फिर अन्तिम कुश्ती मा० चन्दगीराम और मेहरदीन की हुई। यह कुश्ती मैंने प्रो० शेरसिंह की प्रेरणा पर स्वयं देखी। मैं काशी जारहा था। मेरे पास समय नहीं था, चलता हुआ कुछ देख चलूं यह विचार कर वहां पहुँच गया। उस दिन बड़ी भारी भीड़ थी। कुश्ती देखने के लिये दिल्ली की जनता इस प्रकार उमड़ पड़ेगी, मुझे यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं आसकता था। वैसे यह दंगल २८ अप्रैल से चल रहा था। इस भारत केसरी दंगल में क्रमशः गुरकीर्तसिंह, भगवानसिंह, सुखवन्तसिंह तथा रुस्तमे अमृतसर बन्तासिंह को १० मिनट के भीतर अखाड़े से बाहर करनेवाला हरयाणा का सिंह पुरुष अखाड़े में उतरा। उधर जिससे गतवर्ष टक्कर हुई थी, वह उपविजेता मेहरदीन सम्मुख आया। दोनों में टक्कर होनी थी। वैसे बड़े पहलवान कुश्ती जीतकर पुनः उसी प्रतियोगिता में भाग नहीं लेते। क्योंकि पुनः हार जाने पर सारे यश और कीर्ति के धूल में मिलने का भय रहता है, किन्तु कौन चतुर व्यक्ति हरयाणे के इस नरकेसरी की प्रशंसा किये बिना रह सकता है? जो अपनी शक्ति और बल पर आत्मविश्वास करके पुनः भारत केसरी के दंगल में कूद पड़ा और अपने द्वारा हराये हुये मेहरदीन से पुनः टकराने के लिये अखाड़े में उतर आया। मेहरदीन भी एक वर्ष तक तैय्यारी करके आया था। इधर मा० चन्दगीराम को अपने भुज बल पर पूर्ण विश्वास था। उसने गतवर्ष इसी आधार पर समाचार पत्रों में एक बयान दिया था—

"भीमकाय मेहरदीन पर दाव कसना खतरे से खाली नहीं था। भारत केसरी की उपाधि मैंने भले ही जीत ली, पर मेहरदीन के बल का मैं आज भी लोहा मानता हूं। पर इतना स्पष्ट कर दूं कि अब यह मुझे अखाड़े में चित नहीं कर पायेगा, मैंने इस की नस पकड़ली है और अब मैं निडर होकर उससे कुश्ती लड़ सकता हूं और इन्हीं शब्दों के साथ मैं

मेहरदीन को चुनौती देता हूँ कि वह जब भी चाहें जहां उसकी इच्छा हो। मुझ से फिर कुश्ती लड़ सकता है।

मेरी जीत का रहस्य कोई छिपा नहीं, मैं शक्ति (स्टेमिना) और धैर्य के बल पर ही अपने से अधिक शक्तिशाली और भारत के रुस्तमेहिन्द मेहरदीन को पछाड़ने में सफल रहा।

मुझे पूरा विश्वास था कि यदि दस मिनट तक मैं मेहरदीन के आक्रमण को विफल करने में सफल हो सका तो उसे निश्चय ही हरा दूंगा। आपने ही क्या दुनियां से देखा कि प्रारम्भ के १०-१२ मिनट तक मैं मेहरदीन पर कोई दाव लगाने का साहस नहीं कर सका। १३ वें मिनट में ज्यों ही मेहरदीन ने पटे निकालने का यत्न किया, त्यों ही मैंने उसकी कलाई पकड़कर झटक दी। वह औंधे मुंह अखाड़े पर गिरता गिरता बचा और दर्शकों ने दाद देकर (प्रशंसा करके) मेरे साहस को दुना कर दिया। कई बार अनेक के बल पर मैंने नीचे पड़े मेहरदीन को चित्त करने का यत्न किया। यदि आप ने ध्यान किया हो तो मैं निरन्तर अपने चेहरे से मेहरदीन की स्टीलनुमां (फौलादी) गरदन को रगड़ता रहा था।

मैं हरयाणे के एक साधारण किसान परिवार का जाट हूं। स्वर्गीय चाचा सदाराम अपने समय के एक नामी (प्रसिद्ध) पहलवान थे। मरते समय उन्होंने मेरे पिता श्री माड़ूराम से कहा था, इसे दो मन घी दे दो। यही पहलवानी में वंश का नाम उज्ज्वल कर देगा।

मैं किसी प्रकार से इन्टर पास कर आर्ट एण्ड क्राफ्ट में प्रशिक्षण ले मुढाल ग्राम के सरकारी स्कूल में खेलों का इन्चार्ज मास्टर लग गया। मैं बचपन में उदास रहता था। प्रायः यही सोचा करता था कि संसार में निर्बल मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।"

उपर्युक्त कथन से यह प्रकट होता है कि अपने चचा की प्रेरणा से ये पहलवान बने। पहलवानी इनके घर में परम्परा से चली आती थी। इसे

तो तीस चालीस वर्ष पूर्व हरयाणे के सभी युवक कुश्ती का अभ्यास करते थे। उसी प्रकार के संस्कार मास्टर जी के थे, अपने पुरुषार्थ से वे इतने बड़े निर्भीक नामी पहलवान बन गये। इस प्रकार एक वर्ष की पूर्ण तैयारी के बाद १९६९ में होनेवाले दंगल में पुनः १२ मई के सायं समय भारत केसरी दंगल में मेहरदीन से आभिड़े। आज भारत केसरी का निर्णायक दंगल था। इससे पूर्व इसी दिन हरयाणे के वीर युवक मुरारीलाल वर्मा "भारत कुमार" के उपाधि विजेता बने थे। यह भी पूर्णतया निरामिष-भोजी विशुद्ध शाकाहारी हैं। यह भी सारे भारत के विद्यार्थी पहलवानों को जीतकर भारतकुमार बना था। अब विख्यात पहलवान दारासिंह की देखरेख में (निर्णायक के रूप में) भारत केसरी उपाधि के लिये मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुवा। प्रारम्भ में ही मा० चन्दगीराम ने अपने फौलादी हाथों में मेहरदीन के हाथ को जकड़ लिया। मेहरदीन पहली पकड़ में ही घबरा गया। उसे अपनी पराजय का आभास होने लगा। जैसे तैसे टक्कर मार कर हाथ छुड़ाया किन्तु फिर दूसरी पकड़ में वह हरयाणे के इस शूरवीर के पंजे में फंस गया, वह सर्वथा निराश होगया। विवश होकर केवल ७ मिनट ४५ सैकिण्ड में उससे छूट मांग ली अर्थात् बिना चित्त हुये उसने आगे लड़ने से निषेध कर दिया और अपनी पराजय स्वीकार कर भीगे चूहे के समान अखाड़े से बाहर होगया। दर्शकों को भी ऐसा विश्वास नहीं था कि विशालकाय मेहरदीन हलके फुलके मा० चन्दगीराम से इतना घबरा कर बिना लड़े अपनी पराजय स्वीकार कर अखाड़ा छोड़ देगा। दर्शकों को तो भय था कि कभी चन्दगीराम हार न जाये। लोग उसकी जीत के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। हार स्वीकार करने से पूर्व दारासिंह निर्णायक ने मेहरदीन को कुश्ती पूर्ण करने को कहा था, किन्तु वह तो शरीर, मन, आत्मा सबसे पराजित होचुका था। उसके पराजय स्वीकार करने पर निर्णायक दारासिंह ने हजारों दर्शकों की उपस्थिति में मास्टर चन्दगीराम को विजेता घोषित कर दिया। फिर क्या था, तालियों की

गड़गड़ाहट तथा मा० चन्दगीराम के जयघोषों से सारा क्रीडाक्षेत्र गूंज उठा। श्री विजयकुमार मलहोत्रा मुख्य कार्यकारी पार्षद ने दूसरी बार विजयी हुये मा० चन्दगीराम को भारत केसरी के सम्मानजनक गुर्ज से अलंकृत किया। सारे भारत में इनके विजय की धूम मच गई। स्थान-स्थान पर स्वागत होने लगा। इनके अपने ग्राम सिसाय (जि० हिसार) में भी इनका बड़ा भारी स्वागत हुवा। उस स्वागत समारोह में मैं स्वयं भी गया और मा० चन्दगीराम को इनके दोबारा विजय पर स्वागत करते हुये बधाई दी। गत वर्ष प्रथम भारतकेसरी विजय पर हरयाणे के आर्य महासम्मेलन पर सारे आर्यजगत् की ओर से भारतकेसरी मा० चन्दगीराम तथा हरयाणाकेसरी आर्य पहलवान रामधन इन दोनों का रोहतक में स्वागत किया था।

इस प्रकार मा० चन्दगीराम की देशव्यापी ख्याति, कुश्ती कला की जानकारी, लम्बा श्वास वा दम, उनकी हाथों की फौलादी पकड़ से देशवासियों के हृदयों में नवीन आशाओं का संचार होने लगा है। पुनः मल्लयुद्ध (कुश्ती) के प्रति श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न होगया है।

मा० चन्दगीराम का विजय उनका अपना विजय नहीं है, यह शाकाहारियों का मांसाहारियों पर विजय है। यह ब्रह्मचर्य का व्यभिचार पर विजय है क्योंकि मा० चन्दगीराम सात मास के पश्चात् अब अपने घर पर गया था, वह गृहस्थ होते हुये भी ब्रह्मचारी है। अगले दिन प्रातःकाल पुनः दिल्ली को चल दिया। इस श्रेष्ठ आर्ययुवक हरयाणे के नरपुङ्गव की जीत आबाल वृद्ध वनिता सभी अपनी जीत समझते हैं। मा० चन्दगीराम को यह सदाचार की प्रेरणा आर्यसमाज की शिक्षा महर्षि दयानन्द के पवित्र जीवन से ही मिली है। वे इसे अपने भाषणों में बार-बार स्वयं कहते रहते हैं।

इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है, जिस से यह सिद्ध होता है कि घी-दूध ही बल का भण्डार है। "घृतं वै बलम्"। घृत ही बल है, मांस नहीं। मांस से बल बढ़ता है इस भ्रम को मा० चन्दगीराम ने सर्वथा दूर कर दिया है।

एकबार हरयाणे के पहलवानों को एक मुस्लिम पहलवान कट्टे ने जो झज्जर का था, छुट्टी दे दी। फिर ब्रह्मचारी बदनसिंह आर्य पहलवान निस्तौली निवासी से इसकी कुश्ती झज्जर में ही हुई। उस कसाई पहलवान का शरीर बड़ा भारी मरखम था और ब्र० बदनसिंह चन्दगीराम के समान हलका फुलका था। उस कसाई पहलवान के पिता ने कहा इस बालक को मरवाने के लिये क्यों ले आये? घुमराम भदानी वाले पहलवान को लाओ, उसकी और इसकी जोड़ है। किन्तु भदानियां घुमराम पहलवान कुश्ती लड़ना नहीं चाहता था। उसके पिता जी ही पहलवान बदनसिंह को कुश्ती के लिये निस्तौली से लाये थे। कुश्ती हुई। ब्र० बदनसिंह ने पहले तो बचाव किया। कसाई कट्टा पहलवान पहले तो खूब उछलता-कूदता रहा, फिर १५-२० मिनट के पीछे उसका दम फूलने लगा, जैसे कि मांसाहारियों का दम फूलता ही है। फिर क्या था, ब्र० बदनसिंह का उत्साह बढ़ने लगा और अन्त में भीमकाय कसाई पहलवान को चारों खाने चित्त मारा। ब्र० बदनसिंह को कसाई पहलवान के पिता ने स्वयं पगड़ी दी और छाती से लगाया।

इस प्रकार की सैंकड़ों घटनायें और लिखी जा सकती हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि मांसाहारी बली वा शक्तिशाली नहीं होता, और न ही मांस से बल बढ़ता है, किन्तु घी दूध ही बल और शक्ति प्रदान करते हैं।

मांसाहारी वीर नहीं होते

न जाने लोग मांस क्यों खाते हैं, न इसमें स्वाद है और न शक्ति। मांस स्वाभाविक नहीं। मांस में बल नहीं, पुष्टि नहीं। यह स्वास्थ्य का

नाशक और रोगों का घर है। मनुष्य मांस को कच्चा और बिना मसाले के खाना पसन्द नहीं करते। पहल-पहल मांस के खाने से उल्टी आजाती है। बहुतों को मांस के देखने तथा उसकी दुर्गन्ध से ही उल्टी आजाती है। डाक्टर लोकेशचन्द्र जी तथा लेखक की रूस की यात्रा में मांस की दुर्गन्ध से कई बार बुरी अवस्था हुई, वमन आते-आते बड़ी कठिनाई से बची। फिर भी लोग इसे खाते हैं। कई लोग तो बड़ी डींग मारते है कि मांसाहार बड़ा बल और शक्ति बढाता है। यह भी सर्वथा मिथ्या है। नीचे के उदाहरण से यह सिद्ध हो जायेगा।

कुछ वर्ष पूर्व लोगों की यह धारणा थी कि कुश्ती लड़नेवाले पहलवानों और व्यायाम करनेवालों को मांसाहार करना आवश्यक है, इस लिये, योरोप, अमेरिका और पश्चिमी देशों के पहलवान अवश्य मांस और अन्य उत्तेजक पदार्थ खाते थे। पर अब उनकी यह धारणा बदल गई और वे शाकाहारी बनते आरहे हैं। तुर्की के सिपाही मांस बहुत कम खाते हैं, इस लिये वे योरोप भर में बली और योद्धा समझे जाते हैं। १९१४ के विश्व-युद्ध में भारत की ६ नं० जाट पलटन ने अपनी वीरता के कारण सारे संसार में प्रसिद्धि पाई। उस पलटन के अनेक वीर सैनिकों ने अपनी वीरता के फलस्वरूप विक्टोरिया क्रास पदक प्राप्त किए। इस छः नं० पलटन में सभी हरयाणे के सैनिक निरामिषभोजी थे। उन्हें युद्ध के क्षेत्र में खाने के लिए जब बिस्कुट दिये गए, तो उन्होंने इस सन्देह से कि कभी इनमें अण्डा न हो, उन्हें छुवा तक नहीं। सूखे भूने हुये चणे चबाकर लड़ते रहे। इन्हीं की वीरता के कारण अंग्रेजों की जीत हुई। अभी पाकिस्तान के साथ हुये सन् १९६५ के युद्ध में हरयाणे के निरामिषभोजी वीर सैनिकों ने हाजी पीर दर्रे, स्यालकोट, डोगराई, खेमकरण आदि के मोर्चों पर मांसाहारी पाकिस्तानियों को भयङ्कर पराजय (शिकस्तफाश) दी। खेमकरण के मोर्चे पर हरयाणे के पहलवानों ने ४८ टैंकों से पाकिस्तान के २२५ टैंकों से

टक्कर ली और उनको हराकर टैंक छीन लिए, कितने ही टैंकों को होली मंगला दी। डोगराई का मोर्चा तो हरयाणे के वीर सैनिकों की वीरता का इतिहास प्रसिद्ध मोर्चा है। उसे विजय करके भारत तथा हरयाणे के यश और कीर्ति को चार चांद लगा दिए। इनकी वीरता का इतिहास कभी पृथक् लिखने का विचार है।

हमारे निरामिषभोजी सैनिक

मैं ६ नं० जाट पलटन की चर्चा पहले कर चुका हूं। इसी प्रकार ७ नं० रिसाले की गाथा है, जिसमें अंग्रेज आफिसर जे० एम० करनल बारलो थे। बरमा में उस समय हमारी भारतीय सेना गई हुई थी। वहां सेना में बलपूर्वक मांस खिलाने की बात चली। हरयाणा के सैनिक जाट, अहीर, गूजर, उस समय प्रायः सभी शाकाहारी थे। सब पर बड़ा दबाव दिया गया। यहां तक धमकी दी गई कि जो मांस नहीं खायेगा, उसको गोली मार दी जायेगी। उस रिजमेण्ट में १२०० सैनिक थे। केवल हरयाणे के तीस चालीस युवक थे, जिन्होंने स्पष्ट रूप से मांस खाने से निषेध कर दिया। इन सब के नेता आर्य सैनिक जमादार रिसालसिंह भालोठ जि० रोहतक हरयाणा के रहनेवाले थे। उन्हें सब सैनिकों से अलग करके कैद में बन्दी के रूप में बन्द कर दिया। फिर तीन दिन के पश्चात् पुनः विचार करने के लिये छोड़ दिया गया। उन्हीं दिनों सारी रिजमेंट की लम्बी दौड़ होनी थी। उस दौड़ में जमादार रिसालसिंह (शाकाहारी) ने भाग लिया। वे सारी रिजमेन्ट में १२०० आदमियों में से सर्वप्रथम दौड़ में आये। वह अंग्रेज कर्नल इससे बड़ा प्रसन्न हुआ। रिसालसिंह को बड़ी शाबाशी और पुरस्कार दिया। किन्तु दस दिन के पीछे फिर बलपूर्वक मांस खिलाने की चर्चा चली। इनकार करने पर फिर रिसालसिंह की पेशी उस अंग्रेज आफिसर के आगे हुई। रिसालसिंह ने निर्भय होकर कह दिया, हमारे बाप दादा सदैव से शाकाहार करते आये हैं-हम मांस नहीं खा सकते और मांस

खाने की आवश्यकता भी नहीं। हम बिना मांस खाये किस कार्य में पीछे हैं या किस से निर्बल हैं। मैं १२०० सैनिकों में लम्बी दौड़ तथा अन्य खेलों में सर्वप्रथम आया हूँ फिर हमें मांस खाने के लिये क्यों तंग या विवश किया जारहा है। अंग्रेज आफिसर की समझ में आगया और उसने रिसालसिंह को छोड़ दिया और यह घोषणा कर दी, कि मांस खाना आवश्यक नहीं, जो न खाना चाहे वह न खाये, जबरदस्ती (बलपूर्वक) किसी को न खिलाया जाये। इस प्रकार के संघर्ष फौजों में हरयाणे के सैनिक बहुत करते रहे। कप्तान दीवानसिंह बलियाणा निवासी को मांस न खाने के कारण बरमा से लखनऊ वापिस भेज दिया था। इनको उन्नति (परमोशन) भी नहीं मिली।

सर्वश्री कप्तान रामकला सांपलाख रोहतक, सूबेदारजर मेजर खजानसिंह रोहद, रोहतक, पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती; रघुनाथसिंह खरर; छोटूराम (ब्रह्मदेव) नूनामाजरा; उमरावसिंह खेड़ी बहू: श्री रिसालसिंह महराणा; देवीसिंह एलालपुर; नेतराम सांपड़ोदा; दफेदार रिसालसिंह बेरी, सुल्तेसिंह रोहणा निवासी इत्यादि हरयाणे के सैकड़ों फौजी सिपाहियों ने मांस न खाने के कारण अंग्रेजी काल में फौज में बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं। कितनों की जेल हुई कितनों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा, कितनों को तरक्की नहीं मिली। दफेदार रिसालसिंह बेरी के सैंकड़ों शिष्य कप्तान, मेजर आदि बन गये किन्तु ये दफेदार रहते रहते ही दफेदारी की पेंशन लेकर चले आये, किन्तु मांस नहीं खाया। शुद्ध शाकाहारी रहते हुये हरयाणे के इन वीरों ने जो वीरता दिखलायी, उसकी चर्चा मैं अन्यत्र कर चुका हूँ।

सन् १९१७ ई० में स्वामी ब्रह्मोपानन्द जी महाराज "११३ नं० सेना" में बगदाद में थे। उस समय हवलदार थे। इनका नाम भवानीसिंह था। अंग्रेज उस समय सैनिकों को मांस और शराब बलपूर्वक खिलाते थे,

युद्ध के समय इस विषय में अधिक कठोरता वरतते थे। सब से पूछने पर अनेक व्यक्तियों ने मांस खाने का निषेध (इनकार) कर दिया। उन में प्रमुख व्यक्ति रामजीलाल हवलदार कितलाना (महेन्द्रगढ), हुकमसिंह गुरगांवा चिरंजीलाल भरतपुर (राज्य), अमरसिंह गुड़गांवा, तथा भवानीसिंह (स्वामी सन्तोषानन्द जी) थे। अंग्रेज आफिसर ने मांस न खाने वाले ६ सैनिकों को पृथक् छांट लिया और गोली मारने का भय दिखाया गया। उस समय भवानीसिंह ने अंग्रेज आफिसर से यह निवेदन किया कि हमें गोली मारनी है तो भले ही मार लेना, हम तैय्यार हैं। मांस नहीं खायेंगे। किन्तु हम मांस खानेवालों से किस कार्य में पीछे हैं, या हम उन से कोई निर्बल हैं? हमारा उन से मुकाबला करवाके देखलें। कुश्ती, रस्साकशी, कबड्डी सब खेल कराये गए। स्वामी सन्तोषानन्द जी (माजरा शिवराज रेवाड़ी वाले भवानीसिंह) की कुश्ती मांसाहारी रामभजन तगड़े पहलवान से हुई थी। उसे बुरी प्रकार से हराया। जीत होने पर सब ओर जयघोष होने लगा। फौजी अफसरों ने सब को शाबासी दी और घी-दूध का भोजन देना आरम्भ कर दिया। निरामिषभोजियों की संख्या बढ़ गई। उनका सर्वत्र मान होने लगा। सब अंग्रेज आफिसर भी उनसे प्रसन्न रहने लगे।

मांस खानेवालों से बल, वीरता आदि सब गुणों में ही शाकाहारी, निरामिषभोजी बढकर होते हैं, इससे यही प्रत्यक्ष होता है।

सन् १९५७ के हिन्दी सत्याग्रह में भी इसी प्रकार मांसाहारी तथा हरयाणे के शाकाहारी सत्याग्रहियों में संघर्ष रहता था। तो फिरोजपुर जेल तथा संगरूर जेल में कबड्डी कुश्ती में दोनों पक्षों का मुकाबला हुआ। उस में दोनों जेलों में कुश्ती तथा कबड्डी में हरयाणे के निरामिषभोजी सत्याग्रहियों ने मांसाहारी सत्याग्रहियों को बहुत बुरी भांति हराया।

इसी प्रकार हैद्राबाद के सत्याग्रह में हरयाणे के निरामिषभोजी सत्याग्रही मांसाहारियों को कबड्डी, कुश्ती आदि खेलों में सदैव हराते रहते थे।

अण्डा और मछली

कुछ लोग अण्डे और मछली को मांस ही नहीं मानते। इससे बड़ी मूर्खता और धूर्तता क्या हो सकती है। क्या अण्डे मछली गाजर, मूली की भांति कंद मूल अथवा किन्हीं वृक्षों के फल हैं। कुछ अकल के अन्धे और गांठ के पूरे व्यक्ति कहते हैं कि अण्डे में जीव नहीं होता और मछलियां जल तोरियां हैं। अत एव ये दोनों भक्ष्य हैं। मछलियां तो चलते फिरते जन्तु हैं और इनमें जीव नहीं। मैं समझता हूं कि इस स्वार्थ निहित असत्य कल्पना को कोई भी विचारवान् व्यक्ति नही मान सकता। मछली का मांस सबसे खराब होता है। उसकी भयङ्कर दुर्गन्ध और दोषों की चर्चा पहले हो चुकी है। वह खाने की तो क्या छूने की वस्तु भी नहीं है। वह सब रोगों का घर है। बहुत से अयोग्य, निकम्मे डाक्टरो ने मछली का तेल दवाई के रूप में पिला पिला कर सब का दीन भ्रष्ट कर डाला है। इनसे सावधान रहना चाहिये। इसी प्रकार के दुष्ट प्रकृति के डाक्टर अण्डों के खाने का प्रचार अनेक प्रकार की भ्रांतियां फैला कर करते हैं। अण्डे मे सब प्रकार के अर्थात् ए० बी० सी० डी० सभी प्रकार के विटामिन होते हैं। एक अण्डे में एक सेर दूध के समान शक्ति व बल होता है। एक अण्डा खा लिया मानो एक सेर दूध पी लिया और अण्डे के खाने से जीव हिंसा का पाप भी नहीं लगता। क्योंकि अण्डे में जीव ही नहीं होता। फिर हिंसा किसकी होगी। अतः अण्डे खूब खाने चाहियें। इस प्रकार का नीचतापूर्ण भ्रामक प्रचार डाक्टर तथा अनेक अध्यापक और प्रोफेसर लोग खूब करते हैं। इसमें सार कुछ नहीं है। अण्डे में यदि जीव नहीं है तो अण्डज सृष्टि पक्षी सर्प आदि आदि की उत्पत्ति कैसे होती है। बिना जीव के जीवन नहीं हो सकता और जीवन के बिना शरीर की वृद्धि व विकास नहीं हो सकता। अण्डा गर्भावस्था है। जिस अण्डे में जीव नहीं होता वह सड़ कर कुछ काल में

समाप्त हो जाता है। प्रदत्त अण्डे में जीव का ही नहीं, अपितु मसाला का भी है। अण्डे में जीव नहीं है यह थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जावे तो वह मनुष्य का भोजन है यह कैसे माना जा सकता है। अण्डे की उत्पत्ति रज वीर्य से होती है। वह मल मूत्र के स्थान से बाहर आता है। जो गुण कारण में होते हैं वे ही कार्य में पाये जाते हैं— कारणगुण— पूर्वकाः कार्ये गुणा दृष्टाः इसके अनुसार जो गुण कारण में होते हैं वे ही उसके कार्य में आते हैं। जैसे जो गुण गेहूं में है, वे ही उसके बने पदार्थों रोटी, दलिया, पूरी, कचौरी आदि में भी मिलते हैं। अन्य पदार्थों के मिलाने से उन पदर्थों के गुण दोष भी उनमें आजाते हैं। अण्डे सारे संसार में मुर्गियों के ही खाये जाते हैं। मुर्गी गन्दे से गन्दे पदार्थ को खा जाती है। जैसे सभी के थूक, खखार मल मूत्र और टट्टी आदि एवं कीड़े मकोड़े कीचड़ आदि खाती है। गन्दी सड़ी नालियों के कीड़ों और दुर्गन्धयुक्त मलमूत्रवाले पदार्थों को मुर्गी बड़े चाव से खाती है। किसी भी गन्दगी को वह नहीं छोड़ती। भूमि को शुद्ध करने के लिये भगवान् ने अच्छे भंगी मुर्गी और सूअरों को बनाया है। लोग इनको तथा इनके अण्डे एवं बच्चे सब कुछ हजम कर जाते हैं। अण्डों में सारे विटामिन होने की दुहाई देते हैं। फिर जो वस्तु थूक, खखार, श्लेष्मा नाक के मल और टट्टी आदि को मुर्गी खाती है, उन सब में भी विटामिन होने चाहियें और फिर इन मुर्गी के अण्डों को खाने की क्या आवश्यकता है। विटामिन्स का भण्डार तो थूक एवं टट्टी आदि ही हुये। उन्हें क्यों घर से बाहर फेंकते हो। अच्छा हो उन्हें ही खा लिया करो। इन मुर्गी आदि तथा इनके अण्डे और बच्चों में बच्चों के प्राण तो बच जायेंगे और मांसाहारियों के विटामिन्स की पूर्ति बिना हिंसा के सस्ते में ही मुर्गी पाले बिना हो जायेगी। कितनी विडम्बना प्रवञ्चना और बुद्धि का दिवालियापन है कि इतनी गन्दी वस्तु भी मनुष्य का भोजन वा भक्ष्य है तो

फिर अभक्ष्य क्या है ? कहां हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि, कहां हम उनकी सन्तान । भयंकर पतन और सर्वनाश आज हमारी दशा देखकर मुख फाड़े खड़ा है । मनु महाराज लिखते हैं :—अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च' अर्थात् उन्होंने मल मूत्र आदि गन्दगी से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों को अभक्ष्य ठहराया है । जिन खेतों में मनुष्य के मल मूत्र की खाद पड़ती है उनमें उत्पन्न हुई शाक सब्जियां तथा अन्न भी नहीं खाना चाहिये जिन पदार्थों लहसुन, प्याज, शलगम आदि से दुर्गन्ध आती है वे कभी खाने योग्य नहीं होते । रही अण्डों की बात । मैं स्वयं ऐसा भाव से रोगियों की चिकित्सा करता हूँ । कुछ दिन पूर्व मेरे पास एक युवक आया जो मस्तिष्क का रोगी था । पागलपन के कारण उसकी सरकारी नौकरी भी छूट गई थी । उसके घरवाले उसे मेरे पास लाये । वे पाकिस्तान से आये पंजाबी भाई थे । मैंने देखकर कहा कि इस रोगी युवक ने बहुत गर्म पदार्थ अधिक मात्रा में खाये हैं । इसकी चिकित्सा बहुत कठिन है । पूछने पर उन्होंने बताया कि यह बहुत अण्डे खाता रहा है । इसी के कारण पागल हुआ । एक दिन एक और दूसरा इसी प्रकार का रोगी मेरे पास आया । वह भी अधिक अण्डे खाने से पागल हो गया था । इसी प्रकार एक भारत के वाम-मार्गी को पागलावस्था में मैंने कलकत्ता के हस्पताल में स्वयं देखा । जो बुरी तरह से पागल था । कभी रोता था कभी हंसता था । उसकी दुर्गति देखकर मुझे बड़ी दया आई । मैं क्या कर सकता था । जो व्यक्ति अपने वाममार्गी साहित्य द्वारा मद्य मांस और व्यभिचार का प्रचार करता रहा । स्वयं को महाविद्वान् प्रकट करता हुआ लोगों को पागल बनाता रहा । उसे भगवान् ने अन्तिम समय में पागल बनाकर उसको तथा उस पर झूठा विश्वास करनेवाले लोगों को शिक्षा देकर सावधान किया । देश विदेश मे चिकित्सा करवाने पर तथा सहस्रों रुपया पानी की भांति व्यय करने पर भी वह तथाकथित विद्वान् एवं महापण्डित अच्छा न हो सका और उसी पागल अवस्था में ही मृत्यु का ग्रास बन गया । वह था मांस शराब और व्यभिचार का खुला

प्रचार करनेवाला राहुल सांस्कृत्यायन। उसे ही क्या अपितु सभी को अपने पाप पुण्य का फल भगवान् की व्यवस्थानुसार भोगना ही पड़ता है। बौद्ध भिक्षु होने पर पुनः गृहस्थी बनना, मांस शराब का सेवन करना, बुढापे में तीसरा विवाह करना, ऐसे पाप थे जिनका फल करनेवाले के अतिरिक्त कौन भोगता? स्पष्ट है कि मांस भक्षणादि का दुःखरूपी फल सभी मांसाहारियों को भोगना पड़ता है। अतः अण्डा मांस मनुष्य का भोजन नहीं है।

योरूप के कुछ विचारशील डाक्टर अब मानने लगे हैं कि अण्डे में एक भयङ्कर विष होता है जो सिर दर्द, बेचैनी पागलपनादि भयङ्कर रोगों को उत्पन्न करता है। रूस के कुछ डाक्टर तो यह मानते हैं कि "अण्डे मांस के खाने से बुढापे में अनेक भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं और उनके कारण मृत्यु से पूर्व ही मांसाहारी लोग चल बसते हैं। उनकी रीढ की हड्डी कठोर होकर बुढापा शीघ्र आ जाता है। मांसाहारी मनुष्य कुबड़ा हो जाता है। रीढ की हड्डी का कमान बन जाता है। आंखों के रोग मोतियाबिन्द आदि हो जाते हैं।" यह मत डा० प्रो० मैचिनकॉफ आदि अनेक रूसी विद्वानों का है।

जो लोग अण्डों में जीव नहीं मानते उनके लिए एक परीक्षा लिखी है।

(१) जिन अण्डों में जीव वा जीवन होता है, उन्हें आप किसी जल से भरे पात्र में डाल दें, वे सब डूब जायेंगे तथा नीचे स्तह में चले जायेंगे।

(२) जिन अण्डों में कुछ मरने के लक्षण उत्पन्न होने लगेंगे तो वे अण्डे पानी की तह में नीचे खड़े हो जायेंगे।

(३) जिस अण्डे में जीवन समाप्त हो जाता है वह अण्डा ऊपर की तह पर मृत शव के समान तैरता रहेगा डूबेगा नहीं। अतः अण्डों में जीव नहीं है यह मिथ्या भ्रम उपर्युक्त परीक्षणों से दूर हो जाता है। अण्डों में जीव स्वीकार करना ही पड़ेगा और इस नाते उनका प्रयोग भी एक प्रकार से अमानुषिक और घृणित कार्य है।

निरामिषभोजी सिंह और सिंहनी

सन् १९३७ ई० के लगभग की एक सच्ची घटना है कि एक साधु ने किसी शेर के बच्चे को पकड़कर उसका दूध आदि के द्वारा पालन-पोषण किया। वह बड़ा होने पर भी केवल दूधादि का ही भोजन करता रहा। वह सिंह उस साधु के साथ सभी नगरों में खुला घूमता था। उसने कभी किसी जीव जन्तु को कोई हानि नहीं पहुंचाई। वह साधु उस सिंह को साथ लिये हुये दिल्ली में भी आया था। पालतू कुत्ते के समान वह शेर उस साधु के पीछे पीछे घूमता था। अनेक वर्षों तक यह प्रदर्शन उस साधु ने भारत के अनेक बड़े बड़े नगरों में घूमकर किया और सिद्ध कर दिया कि मांसाहारी हिंसक शेर भी दूधाहारी और अहिंसक बन सकता है।

इसी प्रकार महर्षि रमण ने भी एक सिंह को अहिंसक और अपना भक्त बना लिया था। वे योगी थे, शुद्ध सात्विक भोजन (आहार) करते थे। उनका भोजन रोटी, फल, शाक, सब्जी, दूध इत्यादि था। वे मांस, मछली, अण्डे आदि के भक्षण के सर्वथा विरोधी थे। शुद्ध सात्विक आहार पर बड़ा बल देते थे। उनका मत था कि "स्वस्थ और सुदृढ शरीर में स्वस्थ मन तथा दृढ आत्मा का निवास होता है।" वे कहा करते थे— "Vegetable good contains all that is necessary for maintaining the body"

शाकाहारी भोजन में वे सब शक्तियां विद्यमान हैं जो शरीर को पुष्ट और शक्तिशाली बनाने के लिये आवश्यक हैं। महर्षि रमण अपने देशी विदेशी सभी शिष्यों को सात्विक निरामिष भोजन का आदेश देते थे। तथा वैसा ही अभ्यास कराते थे। उन्होंने अपने शिष्य मिस्टर एवेन्स वैन्टेज (Mr. Evans Wentz) आदि सब को निरामिषभोजी बना दिया था।

अहिंसक सिंह

महर्षि रमण का आश्रम जंगल में था, जहां शेर चीते तथा हिंसक पशु रहते थे। एक दिन महर्षि जी भ्रमणार्थ गये तो उन्हें किसी दुःखी सिंह के करहाने की आवाज सुनाई दी। वे धीरे धीरे उस ओर चले तो क्या देखते हैं कि एक सिंह के पैर में आर-पार एक कांटा निकल गया है। शेर का पैर पक गया था और उस पर पर्याप्त सूजन आगया था। वह कई दिन से भूखा प्यासा चलने में असमर्थ तथा पीड़ा से व्याकुल विवश पड़ा हुआ था। महर्षि जी धीरे से उसके निकट गये। शनैः शनैः उसके कांटे को निकाला, जखम को साफ करके जड़ी बूटियों का रस उसमें डाला और पट्टी बांध दी। इस प्रकार पांच दिन मरहम पट्टी करने से वह सिंह स्वस्थ हो गया और महर्षि के आश्रम तक चलकर उनके पीछे पीछे आया और उनके पैर चाटकर चला गया। वह शेर इसी प्रकार सप्ताह दस दिन में आता था और महर्षि के पैर चाटकर चला जाता था। वह किसी आश्रमवासी को कुछ नहीं कहता था।

योग दर्शन के सूत्र "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः" के अनुसार योगी के अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर शेर आदि हिंसक पशु भी योगी के प्रभाव से हिंसा छोड़ देते हैं। यही अवस्था महर्षि रमण के संसर्ग में इस शेर की हुई।

दुग्धाहारी अमेरिकन सिंहनी

अमेरिका के एक चिड़िया घर में एक सुन्दर सिंहनी थी। वह शेरनी वहां से ऊब गई थी और अपने बच्चे का पालन पोषण भी नहीं करती थी। चिड़ियाघरवाले उस के बच्चों को जीवित रखना चाहते थे। वहां एक जार्ज नामक व्यक्ति था, जो जानवरों से बड़ा प्रेम करता था। उसने

जंगल में घोड़े, खच्चर, मोर, बिल्ली, मुर्गे, बत्तख और मृगादि बहुत पाल रखे थे। शेरनी का प्रसव का समय था। चिड़ियाघरवालों ने जार्ज को बुलाया। शेरनी के प्रसव होने पर उसका बच्चा पिंजरे में बन्द करके उसे सौंप दिया। बच्चे की आँखें बन्द तथा एक टांग टूटी हुई थी। उससे वह सिंह शावक बड़ा दुःखी था। उसे जार्ज लेगया। उसने उसका इलाज किया। उसे भोजन के रूप में वह गोदुग्ध देता रहा। टांग अच्छी होगई। शेरनी का बच्चा नर नहीं मादा था। जब इसका जन्म हुआ उस समय इस का भार तीन पौंड था। जो एक मनुष्य के बच्चे से भी बहुत थोड़ा था। किन्तु जब यह दस सप्ताह की आयु का होगया तो उसका भार ६५ पौंड होगया। अब तक जार्ज इसको गाय का दूध ही देरहा था। अब उसने सोचा कि इसे ठोस भोजन दिया जाये, उसने इसे मांस खिलाने का विचार किया। क्योंकि शेर प्रायः जगल मे मांस का ही आहार करते हैं। शेर के बच्चे के आगे मांस परोसा गया, किन्तु उसने इसको नही खाया। इसके दुर्गन्ध से शेर का बच्चा रोगी होगया। फिर जार्ज ने एक चाल चली। उसने मांस से तैय्यार किये हुए अर्क के १०, १५ और ५ बूंदें दूध में क्रमशः डाल कर जब जब उसे पिलाना चाहा तब तब उस शेरनी के बच्चे ने दूध भी नहीं पीया। अब वे विवश हो गए उन्होंने मांस के शोरबे की एक बूंद उसकी बोतल में रखी। किन्तु उसे भी उसने नहीं छुआ। कितनी ही बार वह भूखा रहा, किन्तु उसने मांस अथवा मांस से बने किसी भी पदार्थ को नहीं खाया। वे उसे बूचड़ की दूकान पर ले गये कि वह अपनी इच्छानुसार किसी मांस को चुनकर खा लेगी। किन्तु वह शेरनी किसी प्रकार का भी मांस नहीं खाना चाहती थी। मांस खून की दुर्गन्ध भी उसे व्याकुल कर देती थी। वह शेरनी सारे संसार में प्रसिद्ध हो गई। क्योंकि वह निरामिषभोजी शाकाहारी शेरनी थी। वह अपने साथी अन्य जीवों बिल्ली, मुर्गी, भेड़, बत्तख आदि सबसे प्रेम करती थी। भेड़ के बच्चे उसकी पीठ पर निर्भयता से बैठे रहते थे। उसने कभी

किसी को कोई पीड़ा नहीं दी। उसे गाड़ियों में घूमना, गाना सुनना बड़ा अच्छा लगता था। वह गायों घाड़ों के साथ घूमती थी। उसमें बड़ी होने पर ३५२ पौंड भार हो गया था। उसके चित्र अमेरिका के सभी प्रसिद्ध समाचारपत्रों के प्रथम पृष्ठ पर छपते थे। अन्य देशों के पत्रों में भी उसके चित्र छपे। बच्चे उसकी पीठ पर सवारी करते थे। सिनेमा में भी उसके चित्रपट बनाकर दिखाये गये। वह शेरनी ज्यों ज्यों बड़ी होती गई त्यों त्यों अधिक विश्वासपात्र सभ्य और सुशील होती चली गई। वह दूध और अन्न की बनी वस्तुओं को ही खाती थी। वह १० फीट ८ इन्च लम्बी होगई थी। वह चिड़ियाघर में सदैव खुली घूमती थी। किस प्रकार मांसाहारी शेर शेरनी हिंसक पशु शाकाहारी निरामिषभोजी अहिंसक हो सकते हैं उपर्युक्त सच्चे उदाहरण इसके जीते जागते प्रतीक हैं। फिर मांस खानेवाले मनुष्य अस्वाभाविक भोजन मांस का परित्याग नहीं कर सकते? अवश्य ही कर सकते हैं। थोड़ासा गम्भीरता से विचार करें, मांसाहारी को हानियां समझकर दृढ़ संकल्प करने मात्र की आवश्यकता ही तो है। संसार में असम्भव कुछ भी नहीं। केवल मनुष्य की अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति चाहिये और उसके क्रियान्वयन के लिये आत्मबल। फिर बड़े से बड़ा कार्य सुगम हो जाता है। मांसाहार छोड़ने जैसे तुच्छ से साहस की तो बात ही क्या?

मांसाहार मंहगा भोजन है

पशुओं को पालन के लिए भूमि अथवा जंगल होने चाहियें। मांस पशु पक्षियों अथवा जल जन्तुओं का ही प्रयोग में लाया जाता है। जितनी पृथिवी एक मनुष्य के लिए मांस का भोजन दे सकती है उतनी ही पृथ्वी पन्द्रह मनुष्यों को शाक वनस्पति और अन्न का भोजन दे सकती है। एक मनुष्य को भैंस गाय आदि का मांस देने के लिए बारह एकड़ भूमि में खेती करनी पड़ती है, किन्तु १/१० एकड़ भूमि में इतने गाजर, मूली

शकरकन्दी, आलू आदि उत्पन्न किए जा सकते हैं जो एक मनुष्य के भोजन हेतु एक वर्ष के लिए पर्याप्त हैं। आहार के विषय में हालैण्ड के डाक्टर एम-हैण्डहेड ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है—"यह अनुमान लगाया है कि लन्दन में मांस के भोजन पर वनस्पति व शाकाहार की अपेक्षा बीस गुणा अधिक व्यय होता है। यदि स्वस्थ पशुओं का मंहगा मांस खाया जाये तो और भी अधिक व्यय होता है। सस्ता मांस जो निर्बल और रोगी पशुओं का होता है वह स्वास्थ्य का सर्वनाश कर डालता है। किन्तु सस्ते अन्न जौ आदि की रोटियां महगे अन्न गेहूं की अपेक्षा सात्विक, सुपच और सस्ती होती हैं।

गाय आदि अच्छे पशुओं का मांस खाने से बहुत आर्थिक हानि है। महर्षि दयानन्द जी महाराज अपनी गोकरुणानिधि पुस्तक में लिखते हैं :—

"जो एक गाय न्यून से न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कोई शंका नहीं। इसी हिसाब से एक मास में सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम छः महीने और दूसरी अधिक से अधिक अठारह महीने तक दूध देती है, तो दोनों का मध्य भाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते है। इस हिसाब से बारह महीनों का दूध निनानवे मन होता है। इतने दूध को औटाकर प्रति सेर में छटांक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डालकर खीर बनाकर खावे तो प्रत्येक मनुष्य के लिए दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है। क्योंकि यह भी एक मध्य भाग की गिनती है। अर्थात् कोई दो सेर दूध की खीर से अधिक खायगा और कोई न्यून, इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से १९८० एक हजार नौ सौ अस्सी मनुष्य एक बार तृप्त होते हैं। गाय न्यून से न्यून आठ और अधिक से अधिक १८ अट्ठारह बार ब्याती

है। इसका मध्यभाग १३ तेरह वार आया तो २५७४० पच्चीस हजार सात सौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्म भर के दूध मात्र से एक वार तृप्त हो सकते हैं।

इस गाय की एक पीढी में छः बछिया और सात बछड़े हुये। इनमें से एक की मृत्यु रोगादि से होना सम्भव है तो भी बारह रहे। इन छः बछियाओं के दूध मात्र से उक्त प्रकार १५४४४० एक लाख चवन हजार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन हो सकता है। अब रहे छः बैल। इन मे से एक जोड़ी से दोनों साख में दो सौ मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार तीन जोड़ी छः सौ मन अन्न उत्पन्न कर सकती हैं और उनके कार्य का मध्य भाग आठ वर्ष है। इस हिसाब से ४८०० चार हजार आठ सौ मन अन्न उत्पन्न करने की शक्ति एक जन्म में तीन जोड़ियों की हुई। ४८०० मन अन्न से प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव अन्न भोजन में गिने तो २५६००० दो लाख छप्पन हजार मनुष्यों का एक बार भोजन होता है। दूध और अन्न को मिलाकर देखने से निश्चय है कि ४१०४४० चार लाख दस हजार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है। अब छः गाय की पीढी परपीढ़ियों का हिसाब लगाकर देखा जावे तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और इसके मांस से अनुमान है कि केवल ८० अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। देखो तुच्छ लाभ करने के लिये लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं।

इसी प्रकार भैंस ऊंटनी बकरी आदि सब पशुओं को पाल कर उनके दूधादि के उपयोग बहुत अधिक लाभकारी होते हैं। और इनको मार कर खाने में बड़ी भारी हानि होती है। इसी प्रकार घोड़े, घोड़ी, हाथी आदि से अधिक कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सुअर, कुत्ता, मुर्गा, मुर्गी, मोर आदि पक्षियों से भी अनेक उपकार लेना चाहते हो तो ले सकते हैं।

मांस खाने में जहां स्वास्थ्य बल तथा शक्ति की हानि है वहां आर्थिक हानि भी बहुत बड़ी है। मांस का महंगा भोजन कभी नहीं खाना चाहिये।

क्या मांसाहर से अन्न बचता है ?

हमारी सरकार ने यह बड़ा भ्रम फैला रक्खा है कि मांस मछली अंडे आदि खाने से अन्न कम खाया जाता है और भारत में जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ती जारही है उसके पालन पोषण के लिये अन्न हमें अमेरिका आदि दूसरे देशों से मंगवाना पड़ता है। यदि भारतीय लोग मांस अधिक खाने लग जायें तो अन्न की बचत होजाये, किन्तु यह मिथ्या भ्रम ही है। यथार्थ में सत्य यह है कि मांसाहारी मांस को मिर्च मसाले डालकर अधिक स्वादिष्ट बनाने का यत्न करते हैं। और मांस को तो लोग शाक के स्थान पर खाते हैं और स्वादिष्ट होने के कारण मांस के साथ जो अन्न खाते हैं वह अधिक मात्रा में खाजाते हैं। शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारी तिगुना और चौगुना अन्न खा जाते हैं। जैसे शाकाहारी तीन वा चार रोटी खाता है तो मांसाहारी दस, पन्द्रह रोटी खा जाता है। मांसाहारी बड़े ही पेटू होते हैं। प्राय: मांसाहारी शराबी भी होते हैं। फिर शराबी तो शराब के नशे में सभी अधिक अन्न खाते हैं। अतः मांसाहार से अन्न बचता नहीं किन्तु अन्न कई गुणा और अधिक खर्च होता है। दूध घी के सेवन से अन्न की बचत होती है जो गौ आदि पशुओं के पालन पोषण से ही मिलता है। जगद् गुरु महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—"गाय आदि पशुओं की रक्षा में अन्न भी मंहगा नहीं होता। क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्र को भी खान पान में मिलने पर निश्चित रूप से न्यून ही अन्न खाया जता है और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है। मल के न्यून होने से दुर्गन्ध भी न्यून होता है। दुर्गन्ध के स्वल्प होने से

वायु और वृष्टि जल की शुद्धि भी विशेष होती है। उससे रोगों की न्यूनता होने से सब को सुख बढ़ता है।

इनसे यह ठीक है कि गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती होती है। देखो इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु सात सौ वर्ष के पूर्व मिलते थे उतना दूध घी और बैल आदि पशु इस समय दस गुने मूल्य से भी नहीं मिल सकते। क्योंकि सात सौ वर्ष के पीछे इस देश में गौ आदि पशुओं को मारनेवाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आबसे हैं। वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड मांस तक भी नहीं छोड़ते सो "नष्टे मूले नैव पत्रं न पुष्पम्" जब कारण का नाश कर दें तो कार्य नष्ट क्यों न हो जावे। हे मांसहारियो ! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं। हे परमेश्वर ! तू क्यों इन पशुओं पर जो कि विना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता। क्या इन पर तेरी प्रीति नहीं है। क्या इन के लिये तेरी न्याय सभा बन्द हो गई है। क्यों इनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और इनकी पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता ? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।"

संसार के निरामिषभोजी महापुरुष

जगद् गुरु श्री शंकराचार्य (शारदा पीठ द्वारिका)—

यह अत्यन्त दुःख की बात है कि संसार की युवक पीढी और विशेषकर हिन्दू युवकवर्ग पवित्र शाकाहार को छोड़ता जारहा है और मांसाहार की ओर प्रवृत्त हो रहा है, जो हिन्दुत्व नहीं है। यह मानव का धर्म नहीं है। इसलिये हम सब को सावधान करते हैं और उपदेश देते हैं

कि मानवमात्र को विशेष रूप से हिन्दुओं को शपथ लेनी चाहिये, प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम शुद्ध शाकाहार ही करेंगे और मांस कभी नहीं खायेंगे। इस शपथ को सद्व्यवहार में लाना।

श्री जगद्गुरु शंकराचार्य शृङ्गेरी मठः—

शाकाहार न केवल शरीर को ही शुद्ध रखता है बल्कि आत्मा को भी शुद्ध पवित्र करता है। यह सार्वभौम स्वीकृत सिद्धान्त है कि शाकाहार ही सब राष्ट्रों और जातियों को अधिक स्वस्थ और सुखी करनेवाला है।

श्री जगद्गुरु शंकराचार्य बद्रिकाश्रमः—

अब संसार शुद्ध शाकाहार के महत्त्व को समझने लगा है। क्योंकि शुद्ध सात्त्विक आहार मानसिक शारीरिक और आत्मिक उन्नति का एक मात्र कारण है। यही स्वास्थ्य शक्ति और पवित्रता को देता है।

श्री जगद्गुरु कामकोठी पीठ :-

मनुष्यों में पूर्ण शक्ति और सुख की प्राप्ति के लिये वातावरण का निर्माण शुद्ध शाकाहार ही करता है।

सन्त विनोबा भावे:—

मानव को शीघ्रातिशीघ्र इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचना है कि शाकाहार ही सब भोजनों में श्रेष्ठतम भोजन है, जो शक्ति प्रदान करता है।

योरूप के महान् ईसाई सन्त बासिल :—(३१०-३७९ ई०)

यदि मानव मांसाहार का परित्याग कर दे तो सब प्राणियों के

प्राण बच जायेंगे। उनका व्यर्थ में खून नहीं बहेगा। भोजन की मेजों पर प्रचुरमात्रा में फलों के ढेर लग जायगे, जो प्रकृति ने प्रभूत मात्रा में उत्पन्न किये हैं, और सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो जायेगी।

ईसाई सन्त जेरोमे (Saint Jerome) (३४०-४२०):-

ईसा मसीह हमें मांस खाने की अब आज्ञा नहीं देता। यह बहुत ही अच्छा है कि कभी मांस नहीं खाना चाहिये। न कभी शराब-मद्यपान करना चाहिये —"Jesus Christ to day does not permit us eat flesh according to Apostle(Rom X V-21) It is good never to drink wine and never to eat flesh."

इसी प्रकार अफ्रीका में हिप्पो का बिशप मांस खाने और मद्यपान का निषेध करता है।

St. Augustene (354–430 ई०)

Bishop of HIPPO in Africa says:—not only abstains from flesh wine, but also quotes " That it is good never to eat meat and drink wine when by so doing we Scandalize our brothers."

कोन्स टेंटी नोपल का आर्च बिशप क्रीसोसटोम Chrysostom (३८६—४०६) लिखता है—रोटी और जल को छोड़कर मद्य मांस का कोई सेवन नहीं करता था:—No streams of blood are among them no but chering and cutting of flesh. Nor are there the horrible smells of flesh meats among them, or disagree-ble flume from kitchen. No tumult and disturbance and wearisome clamours, but bread and water.

पीथा गोरस (Pythagoras—५७०-४७० ई० पूर्व):—

यह योरुप का एक बहुत बड़ा दार्शनिक, गणितज्ञ और संगीत विद्या का भी बहुत बड़ा विद्वान् था। उसने कभी मांस और मद्य का सेवन नहीं किया। वह शाक सब्जी और रोटी ही खाता था।

योरुप के कवि

अंग्रेज कवि सामुयल टेलर कोलरिज (Samull Taylor Colaridge 1772-1834) लिखता है:—

"He prayeth best who loveth best. Both man and bird and beast for the dear God who loveth us. He made and loveth all."

अर्थात् जो व्यक्ति, मनुष्य, पक्षी और पशुओं अर्थात् सब प्राणियों से बहुत अधिक प्रेम करता है, वही भगवान् का सच्चा भक्त व उपासक है। जो प्रिय प्रभु के लिये हम सबसे प्रेम करता है, वही यथार्थ में सबका प्रेमी है।

अमेरिका के हेनरी वाड्सवर्थ लौंग फेलो लिखते हैं:—

"मैं उस व्यक्ति को सबसे अधिक वीर मानता हूँ जो किसी बड़े नगर में बिना पक्षपात और भय के मित्रहीन पशुओं का मित्र बनकर उनकी सेवा और सुरक्षा, प्राणरक्षार्थ डटकर खड़ा रहता है।"

अंग्रेज कवि जोहन विल्टन कहता है:—कि जो हिंसा से अन्य प्राणियों के प्राण लेते हैं, वे भी अग्नि, बाढ़, दुर्भिक्ष आदि के द्वारा नष्ट हो जायेंगे। मांस और मदिरापान से भूमि पर अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग फैल जायेंगे। राष्ट्र हित के लिये लिखनेवाला लेखक शुद्ध जल और शाकाहार पर ही निर्वाह करता है।

इसी प्रकार अंग्रेज कवि विलियम वर्डसवर्थ, विलियम शेक्सपीयर, परसी वेशी शैले और विलियम कोपर आदि सभी ने मद्य मांस के सेवन का अपनी कविताओं और लेखों में सर्वथा निषेध किया है। विस्तार से उनके पृथक् उदाहरण नहीं दे रहा हूं।

पापों का मूल मांस भक्षण

मांस भक्षण से निरपराध प्राणियों का वध होता है, जैसे— करांची [न]गर के लिये पांच हजार पशु प्रतिदिन मारे जाते हैं, इस प्रकार सारे [पा]किस्तान के लिये प्रतिदिन की गणना १ लाख १० हजार पशुओं के मारे [जा]ने की हुई। इस प्रकार १ वर्ष में ४ करोड़ से अधिक पशु मारे जाते हैं [औ]र अण्डे इससे पृथक् हैं।

भारतवर्ष की जनसंख्या ५० करोड़ से क्या न्यून होगी। हमारी [स]रकार के मांसाहार के प्रचार से मांसाहारियों की संख्या बढ़ रही है। २०–२२ वर्ष में १०–१२ करोड़ से अधिक लोग मांसाहारी होगये होंगे। अगर पाकिस्तान के अनुपात से संख्या लगायें तो ६ वा ७ करोड़ पशुओं को भारत के लोग चट कर जाते हैं। पक्षी, अण्डे, मछली इनसे अलग हैं, जो इनसे कम नहीं हो सकते। इस प्रकार चौदह पन्द्रह करोड़ निर्दोष जीवों की कबरें मनुष्यों के पेट में बन जाती हैं। इसी कारण इतने प्राणियों की हत्या करनेवाले देश के भाग में दरिद्रता, दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़, सूखा, भूचाल अनेक महामारियों की सदैव कृपा बनी रहती है। यदि योंही मांसाहारियों की संख्या बढ़ती रही तो छः मास में सारे पशुओं को भोजन में खा जायेंगे। फिर मनुष्य परस्पर एक-दूसरे को खाने लगेंगे। जैसे ऋषिवर दयानन्द ने लिखा, जो उद्धरण मैंने अन्यत्र दिया है। यदि ये गाय, बकरी, भेड़ आदि न मारें तो इनके दूधादि से देश का अधिक लाभ हो। सभी पशु पक्षी भगवान् ने संसार के हितार्थ बनाये हैं। निम्न-

निम्नलिखित कविता इस पर अच्छा प्रकाश डालती है:—

हाथियन के दांतन के खिलौने भांति भांतियन के ।
मृग की खाल किसी योगी मन भावेगी ॥
शेर की भी खाल पै कोई बैठेंगे जति सति ।
बकरी की खाल कछु पानी भर लावेगी ॥
गैंडे हू की ढाल से कोई लड़ेंगे सिपाही लोग ।
साबरे की खाल राजा राना मन भायेगी ॥
नेकी और बदी ये रह जावेंगी जगत बीच ।
मनुष्य तेरी खाल किसी काम नहीं आवेगी ॥

यह ब्रजभाषा का कवित्त है, जिसको हरयाणे के स्वामी नित्यानन्द जी स्वामी ब्रह्मानन्द जी आदि सभी आर्योपदेशक गाते हैं।

यह मनुष्य जो अपने आपको सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है, इसकी हड्डी, चमड़ा, बाल, नाखून आदि किसी कार्य में नहीं आते। पशुओं की हत्या करके संसार का बड़ा भारी अहित, हानि करते हैं, अतः महापापी हैं, जगत् का अहित ही पाप कहलाता है। दूध-घी जो यथार्थ में मानव का भोजन है, उसके स्रोत गाय-भैंसादि, उनको मांसाहारी लोग खागये। उनकी संख्या १९२८ में चौदह करोड़ छप्पन लाख थी। १९४१ में यह नौ करोड़ रह गई थी और १९६१ में ४ करोड़ संख्या होगई। अब संभव है इनकी संख्या २ करोड़ ही हो। लोग मांस को घी और मसाले से स्वादिष्ट बनाकर खाते हैं। घी तो रहा नहीं, अब लोग मूंगफली-नारियल-वनस्पति तैल से पकाकर खाते हैं। जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों की वृद्धि हो रही है। लोगों में अंधे, बहरे, कोढी, पागल और कैन्सर के रोगी बढ़ते जा रहे हैं, जो मांसाहार का फल है। सर्वथा लोग शक्ति-बल से हीन हो रहे हैं। भारत का कद ३० वर्ष में २ इंच घट गया है और घी-दूध खानेवाले स्वीडन

हालैण्ड आदि देशों में ५ वा ६ इंच कद दो सौ वर्ष में बढ़ गया। महाभारत काल तक भी हमारा कद लम्बाई ६ वा ७ फीट से न्यून नहीं होती थी। क्योंकि महाभारत के बहुत पीछे मेघास्थनीज यूनानी यात्री आया था, उसने लिखा है कि मुझे भारत में किसी का कद ६ फीट से न्यून देखने में नहीं आया। महाभारत के समय तो ७ फीट से न्यून कद किसी का भी नहीं होना चाहिये। उस समय ३००-४०० वर्ष की आयु तक लोग जीवित रहते थे। १०० वर्ष से पूर्व तो कोई नहीं मरता था। १७६ वर्ष की आयु में राजर्षि भीष्म जी कौरव पक्ष के मुख्य सेनापति थे तथा सबसे बलवान् थे। महाराजा शान्तनु के भाई भीष्म पितामह के चचा वाह्लीक भी रणभूमि में लड़ रहे थे। उनके बेटे सोमदत्त पौत्र महारथी भूरिश्रवा तथा उनके प्रपौत्र भूरिश्रवा के पुत्र भी युद्धभूमि में अपना रण-कौशल दिखा रहे थे। अर्थात् १ साथ ४ पीढियां युद्ध में भाग ले रही थीं। ऐसी दशा में वे चार पीढियां युवा ही थीं। अब युवावस्था के दर्शन ही दुर्लभ हैं। किसी किसी भाग्यवान् को युवावस्था के दर्शनों का सौभाग्य मिलता है। बालक वा वृद्ध दो ही अवस्था के स्त्री पुरुष अधिकतया देखने में आते हैं। बिना ब्रह्मचर्य पालन तथा अच्छे घी दुग्धयुक्त सात्विकाहार के कोई युवा नहीं होता। ब्रह्मचर्यपालन, बिना शुद्ध विचार तथा शुद्ध सात्विक आहार के असम्भव है। ब्रह्मचर्य ही सब शक्तियों का भण्डार है। सब सुधारों का सुधार, सब उन्नतियों की उत्पत्ति और सब शुभकर्मों का शुभकर्म ब्रह्मचर्य जीवन ही है। मांसाहारी सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। क्योंकि मांसाहार का उत्तेजक भोजन तो कामवासना की अग्नि को भड़कानेवाला है। इसका इतिहास साक्षी है। भारतभूमि के तो ८८ हजार ऋषि सारी आयु अखण्ड ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी रहे। भारत में प्रत्येक स्त्री-पुरुष १६ तथा २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहते थे। कोई ब्रह्मचर्यरहित अथवा खण्डित ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुष गृहस्थ में भी प्रवेश नहीं कर सकता था। यह पवित्र देश ब्रह्मचारियों का देश था।

उधर मांसाहारियों का इतिहास क्या कह रहा है कि ६० वर्ष की आयु में भी महान् मुस्लिम फकीर मईउद्दीन चिशती अजमेरी विवाह करता है। अकबर महान् कहा जानेवाला इतिहास प्रसिद्ध मुगल बादशाह भी ५००० बेगमों की सेना का पति था, यह है पतन की पराकाष्ठा। छोटे-मोटे मांसाहारियों की बात जाने दें वे क्या ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे? इस समय उन्नति के शिखर पर चढ़े हुये योरुप अमेरिकादि मांसाहारी देशों का मानचित्र (नक्शा) हमारे सन्मुख है। सारे पाप अनाचारों के घर और प्रचारक यही देश है। इसका दिग्दर्शन आप श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी द्वारा लिखित महर्षि दयानन्द जी का जीवनचरित्र में उन्हीं के शब्दों में कीजिये।

"क्या सारी पृथ्वी इस समय घोर अशान्ति से म्रियमाणदशा को प्राप्त नहीं हो रही है? क्या नाना जाति, नाना जनपद; नाना राज्य, नाना देश, अनेक प्रकार की अशान्ति की अग्नि से जलकर छार खार नहीं हो रहे हैं? क्या मनुष्य-संसार से शान्ति विदा नहीं हो गई? क्या कभी सभ्यता के नाम पर मनुष्यों ने इतने मनुष्यों के सिर काटे हैं? क्या कभी उन्नति की पताका हाथ में लेकर मनुष्य ने वसुन्धरा को नर रक्त से इतना रंगा है? यदि पहले ऐसा कभी नहीं हुआ तो आज क्यों हो रहा है? हम उत्तर देते हैं कि इसका कारण है—अनार्य शिक्षा और अनार्य ज्ञान का विस्तार। इसका कारण यूरोप का पृथ्वीव्यापी प्रभाव और प्रतिष्ठा। यूरोप अनार्य ज्ञान का गुरु और प्रचारक है, वही यूरोप आज (कई शती तक) ससागर वसुन्धरा का अधीश्वर (रहा) है। छोटी-बड़ी, सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित नाना जातियों और जनपदों में उसी यूरोप की शासन-पद्धति प्रतिष्ठित और प्रचलित है। इसलिये जो जाति वा राज्य यूरोप के संसर्ग में आजाता है, उसमें अनार्यज्ञान का प्रचार और प्रतिष्ठा हो जाती है। इसी कारण से उस जाति या राज्य के भीतर अनेक प्रकार की अशान्ति की अग्नि धक्-धक् करके जल उठती है। यूरोप के दो मुख्य सिद्धान्त है :—क्रमोन्नति

(Evolution) और दूसरा है योग्यतम का जय (Survival of the fittest); अर्थात् जिस की लाठी उसकी भैंस। उपाध्याय जी लिखते हैं।— इन दोनों अनार्य सिद्धान्तों के द्वारा तूने जो संसार का अनिष्ट किया है, हम उसे कहना नहीं चाहते। "योग्यतम का जय" नाम लेकर तू सहज में ही दुर्बल के मुंह से भोजन का ग्रास निकाल लेता है। सैंकड़ों मनुष्यों को अन्न से वञ्चित कर देता है। एक एक करके सारी जाति को निगृहीत, निपीडित और निःसहाय कर देता है। जब तू बिजली से प्रकाशित कमरे में संगमर्मर से मण्डित मेज के चारों ओर अर्धनग्ना सुन्दरियों को लेकर बैठता है, उस समय यदि तेरे भोजन, सुख और संभाषण के लिये दस मनुष्यों के सिर काटने की भी आवश्यकता हो तो अनायास ही तो उन्हें काट डालेगा, क्योंकि तेरी तो शिक्षा यही है कि योग्यतम का जय होता है। यूरोप! आसुरीय वा अनार्यशिक्षा तेरे रोम-रोम में भरी हुई है। अपनी अतर्पणीय धनलालसा को पूरी करने के लिये तू एक मनुष्य नहीं, दस मनुष्य नहीं, सौ मनुष्य नहीं, बल्कि बड़ी से बड़ी जाति को भी विध्वस्त कर डालता है। अपनी दुर्निवार्य भोगतृष्णा की तृप्ति के लिये तू केवल मनुष्य को ही नहीं वरन् पशु-पक्षी और स्थावर-जङ्गम तक को अस्थिर और अधीर कर डालता है। अपनी भोग-विलासपिपासा की तृप्ति के लिये तू लखूखा मनुष्यों के सुख और स्वतन्त्रता को सहज में ही हरण कर लेता है। तेरे कारण सर्वा' ही पृथ्वी अस्थिर और कम्पायमान रहती है। यूरोप! तेरे पदार्पणमात्र से ही शान्ति देवी मुंह छिपाकर पलायमान हो जाती है। जिस स्थल पर तेरा अधिकार हो जाता है, वह राज्य सुखशून्य और शान्तिशून्य हो जाता है। जिस देश में तेरे शिक्षा-मन्दिर स्कूल का द्वार खुलता है तू उस देश को वञ्चना, प्रतारणा, कपट, और मुकदमेबाजी के जाल में फांस लेता है।

यूरोप! तूने संसार का जितना अनिष्ट और अकल्याण किया है उस में सब से बड़ा अनिष्ट और अकल्याण यही है कि तूने मनुष्य जीवन को

प्रगति को उलटा करने का यत्न किया है। जिस मनुष्य ने निरन्तर मुक्तिरूप शान्ति पाने के उद्देश्य से जन्म लिया था, उसे तूने धन का दास और दुर्निवार्य भोगेच्छा का क्रीत-किङ्कर बनाने के लिये शिक्षित और दीक्षित कर दिया है। तेरी शिक्षा का उद्देश्य धन-सञ्चय करना ही सब से अधिक वाञ्छनीय है। तू भोगमय और भोग सर्वस्व है। तूने ब्रह्म-वृत्ति (परोपकार की भावना) का अपमान किया और उसे नीचे गिरा दिया और दैत्य वृत्ति (भोग या स्वार्थभावना) का सम्मान किया और उसे सब से ऊंचा आसन दिया है। इसकी अपेक्षा और किस बात से मनुष्य का अधिकतम अनिष्टसाधन हो सकता है? यह यथार्थ बात है "Eat, Drink and be merry" खावो पीवो और मजे उडाओ यही यूरोप की अनार्यशिक्षा का निचोड़ वा निष्कर्ष है, यही रावण जैसे राक्षस और पिशाचों का सिद्धान्त था। इसी आसुरी अनार्यसंस्कृति का प्रचार यूरोप कर रहा है। अपनी जबान के स्वाद के लिये लाखों नहीं करोड़ों प्राणी मनुष्य प्रति दिन मारकर चट कर जाता है और अपने पेट में उनकी कबरें बनाता रहता है। यह सब यूरोप की इस अनार्य-वाममार्गी शिक्षा का प्रत्यक्षफल है। स्वार्थी मनुष्य जो भोग विलास के लिये पागल है, वह कैसे संयमी, ब्रह्मचारी, दयालु न्यायकारी और परोपकारी हो सकता है? "स्वार्थी दोषं न पश्यति" के अनुसार स्वार्थी भयंकर पाप करने में भी कोई दोष नहीं देखता, इसलिये यूरोप तथा उससे प्रभावित सभी देशों में मानव दानव बन गया है। उसे मांसाहार के चट पटे भोजन के लिये निर्दोष प्राणियों की निर्ममहत्या करने में कोई अपराध नहीं दीखता। उसे तड़पते हुये प्राणियों पर कुछ भी दया नहीं आती। आज सारा संसार वाममार्गी बना हुआ है। मद्य मांस, मीन-मुद्रा और मैथुन जो नरक के साक्षात् द्वार हैं, उनको स्वर्ग समझ बैठा है। ऋषियों के पवित्र भारत में जहां अश्वपति जैसे राजा छाती ठोककर यह कहने का साहस रखते थे—

न मे स्तनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कञ्जूस नहीं और न ही कोई शराबी है। अग्निहोत्र किये बिना कोई भोजन नहीं करता न कोई मूर्ख है तथा जब कोई व्यभिचारी नहीं तो व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है।

आज उसी भारत में योरुप की दूषित अनार्ष शिक्षा प्रणाली के कारण चोरी जारी, मांस मदिरा हत्या-कत्ल-खून सभी पापों की भरमार है। इन रोगों की एकमात्र चिकित्सा आर्ष शिक्षा है। जिसका पुनः प्रचार कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास के पीछे आचार्य दयानन्द ने किया। वेद आर्ष ज्ञान का स्वरूप है, क्योंकि दयानन्द के समान वेदसर्वस्व वा वेदप्राण मनुष्य दिखाया जा सकता है। पाठको ! शायद आप हमारी बातों पर अच्छी प्रकार ध्यान नहीं देंगे। इसमें आप का अपराध नहीं है। 'यथा राजा तथा प्रजा'' जैसा राजा होता है वैसी प्रजा भी हो जाती है। राजा अनार्ष विद्या का प्रचारक है। राजकीय शिक्षा पाने और उसका अभ्यास करने से आपके मस्तिष्क की अवस्था अन्यथा हो गई है और इसलिये हमारे कथन को आपके कानों में समाने की सम्भावना नहीं हो सकती, परन्तु आप सुनें वा न सुनें हम बिना सन्देह और संकोच के घोषणा करते हैं कि वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द ही एकमात्र वेदप्राण पुरुष और आर्ष-ज्ञान का अद्वितीय प्रचारक हुआ है। आर्षज्ञान के विस्तार पर ही सारे विश्व की शान्ति निर्भर है। आर्षशिक्षा के साथ मनुष्य समाज की सर्व प्रकार की शान्ति अनुस्यूत है। जैसे और जिस प्रकार यह सत्य है कि एक और एक दो होते हैं, वैसे ही और उसी प्रकार यह भी सत्य है कि आर्ष ज्ञान ही मानवीय शान्ति का अनन्य हेतु है।

अतः मद्य मांस मैथुन आदि भङ्कुर दोषों से छुटकारा आर्ष शिक्षा से ही मिलेगा। आर्ष शिक्षा के केन्द्र हैं—केवल गुरुकुल। अतः अपने तथा संसार के कल्याणार्थ अपने बालक बालिकाओं को केवल गुरुकुलों में ही शिक्षा दिलावो। स्कूल कालिजों में न पढ़ावो, इसी से संसार सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकेगा।

स्वामी ओमानन्द जी की रचनायें

हरयाणा के प्राचीन मुद्रांक	५.०१
हरयाणा के प्राचीन लक्षणस्थान	२००.००
वीरभूमि हरयाणा	५.००
शेरशाह सूरी	१.००
वीर हेमू	१.००
मांस मनुष्य का भोजन नहीं	३.००
ब्रह्मचर्यामृतम्	५.०
बालविवाह से हानियां	.२५
स्वप्नदोष चिकित्सा	.६०
बिच्छूविष चिकित्सा	.५०
सर्पविष चिकित्सा	४.००
पापों की जड़ (शराब)	.३५
हमारा शत्रु (तम्बाकू)	.३५
नेत्र रक्षा	१.००
व्यायाम का महत्व	.६०
रामराज्य कैसे हो	.५०
हरयाणा के वीर यौधेय	३.००
२८ ब्रह्मचर्य के साधन १ से ११ भाग	१८.००
श्लीपद चिकित्सा	.५०
हरयाणा का संक्षिप्त इतिहास	१.००
३१. हरयाणा की संस्कृति	१.००
३२. रूस में १५ दिन	२.००
३३. मेरी विदेश यात्रा	१.५०
३४. जापान यात्रा	२.००
३५. काला पानी यात्रा	१.००
३६. नैरोबी यात्रा	२.५०
३७. शराब से सर्वनाश	४.००
३८. घरेलू औषध हल्दी	१.२५
३९. घरेलू औषध लवण	१.२५
४०. घरेलू औषध मिर्च	१.५०
४१. भारतीय बूटियां आक	३.५०
४२. ,, ,, नीम	१.५०
४३. ,, ,, पीपल	१.५०
४४. ,, ,, बड़	१.५०
४५. ,, ,, सिरस	१.५०
४६. गोदुग्ध अमृत है	५.००
४७. शाक भाजी चिकित्सा	२.५०
४८. आर्यसमाज के बलिदान	१६.००

अप्रकाशित

४९. योरोप यात्रा

५०. भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र

५१. महारानी सीता

५२. महाराजा नाहरसिंह

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल, झज्जर, रोहतक